



मानव अधिकार पत्रिका

मध्यप्रदेश मानव अधिकार आयोग का
त्रैमासिक प्रकाशन

वर्ष 2013

अंक - तृतीय

संरक्षक

जस्टिस ए.के. सक्सेना
कार्यकारी अध्यक्ष

वीरेन्द्र मोहन कँवर
सदस्य

विनोद कुमार, सचिव
ए.के. जैन, अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक
एच.के. दुबे, रजिस्ट्रार (लॉ)

प्रकाशक

कुलदीप जैन
उपसचिव

सम्पादक

रोहित मेहता
संयुक्त संचालक, जनसम्पर्क

सह सम्पादक

संजय कुमार विश्वकर्मा
शोध अधिकारी

सम्पर्क

मध्यप्रदेश मानव अधिकार आयोग
पर्यावास भवन, अरेरा हिल्स,
पुरानी जेल पहाड़ी मार्ग, भोपाल (म.प्र.)
फोन : 0755-2572034
फैक्स : 9755-2574028

E-mail : mphrc@sancharnet.in

Website : www.mphrc.nic.in

मानव अधिकार पत्रिका

तृतीय अंक
वर्ष : 2013



मानव अधिकार पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं,
यह जरूरी नहीं कि आयोग उनसे सहमत हो।



**पत्रिका में प्रकाशित आलेखों का पुर्नप्रकाशन आयोग
का संदर्भ देते हुए किया जा सकता है।**



इस बार...

अनुक्रमणिका

क्र. विषय	पृष्ठ क्रमांक
1. बढ़ते नाबालिग अपराधी और लाचार अदालतें	5
2. पानी की बूंदों की चिंता कीजिए	7
3. स्त्री के अधिकारों की आवाज	10
4. दुकानों में बिकती शिक्षा कहां ले जाएगी	13
5. शिक्षा के कानून की अनदेखी	16
6. नौकरशाही में व्यापक सुधार की जरूरत	19
7. कैसे सुधार हो मिड डे मील में!	21
8. गांवों में डॉक्टरों की समस्या	24
9. बुजुर्गियत का बोझ कैसे ढोएं	26
10. खाद्य सुरक्षा व भंडारण की समस्या	29
11. रैगिंग : प्रभावी उपाय जरूरी	31
12. युवाओं को रोजगार रोटी, कपड़ा, मकान और स्वाभिमान	35
13. रैगिंग का दर्द नहीं समझा	36
14. क्यों हो रहे हैं बुजुर्ग घरों से उपेक्षित !	37
15. परेशान होना है ग्लोबलाइजेशन	39
16. शिक्षा का अधिकार : पहुंच और प्रभाव	42



क्र.	विषय	पृष्ठ क्रमांक
17.	क्योंकि, किसानों लाभदायक रोजगार नहीं	45
18.	The free lunch that works	46
19.	Food for growth	48
20.	When incomes grow, but jobs elude	50
21.	Why promotion is better than protection	52
22.	A reparative justice	54
23.	No exits from these tunnels of death	56
24.	Link TB control programme with food security	59
25.	Can we let this mass murderer run free?	61
26.	ORGANIC FARMING THE ONLY OPTION	64
27.	Handle waste with seriousness	67
28.	Clean energy can light up lives	69
29.	A task only half finished	71
30.	This vaccine needs a booster shot	75
31.	So Much of Water, little to drink	77
32.	Making our cities eco-friendly	79
33.	Child Labour in India	81
34.	International Human Rights Instruments and their Application in India	83
35.	EVE-TEASING: A SITUATIONAL STUDY OF BHOPAL (M.P.)	86



बढ़ते नाबालिग अपराधी और लाचार अदालतें

● डॉ. योगेन्द्र श्रीवास्तव

दि | सम्बर 2012 में दक्षिण दिल्ली में घटित बहुचर्चित 'निर्भया' गैंगरेप कांड के बाद नाबालिग अपराधियों से संबंधित कानूनी प्रावधानों पर बहस जारी है। उल्लेखनीय है कि इस हादसे में सर्वाधिक हिंसा और निर्ममता का प्रदर्शन करने वाला अपराधी वारदात के समय 18 वर्ष से बमुश्किल 5 माह कम उम्र का होने के कारण कानूनन नाबालिग था इसलिए ऐसे जघन्य अपराध के लिए उसे सुधारगृह में अधिकतम 3 साल का कारावास दिया गया है। तमाम पुख्ता सबूतों के बावजूद इस निर्मम अपराधी को एक नाकाफी सजा सुनाने के अलावा अदालत के सामने कोई विकल्प नहीं था। गौरतलब है कि उसी अपराध में लिप्त शेष 4 जीवित अपराधियों को फांसी की सजा सुनाई गई।

दिल्ली की उक्त घटना के बाद नाबालिग अपराधियों की रिपोर्टिंग विशेष चिन्ता के साथ की जा रही है। कुछ माह पहले सीहोर जिले के इछावर थाना क्षेत्र में एक नाबालिग छात्रा के साथ उसी के सहपाठी 5 नाबालिग छात्रों द्वारा गैंगरेप किया गया। दिल्ली के अशोकनगर इलाके में एक नाबालिग ने अपनी नाबालिग चचेरी बहनों के साथ बलात्कार किया। मुम्बई के महिला पत्रकार गैंगरेप मामले में भी पांच में से एक आरोपी नाबालिग पाया गया है। अभी हाल में ही जबलपुर जिले के पाटन क्षेत्र में एक 9 वर्षीय बालिका के साथ दो नाबालिग लड़कों द्वारा बलात्कार की घटना सामने आयी है। बलात्कार के अलावा डकैती, अपहरण और हत्या जैसे गंभीर मामलों में भी नाबालिग अपराधियों की तादाद बड़ी तेजी से बढ़ रही है जो समाज के लिए खतरे की घंटी है और कानून के लिए चुनौती।

पहले 1986 के अधिनियम के मुताबिक 18 वर्ष से

कम लड़कियाँ तथा 16 वर्ष से कम लड़कों को अवयस्क माना जाता था परन्तु 2001 में इस कानून में बदलाव करके दोनों की वयस्कता की उम्र 18 वर्ष कर दी गई। दरअसल कई अंतर्राष्ट्रीय समझौतों का सदस्य होने के नाते भारतीय सरकार की मजबूरी थी कि वह बाल अधिकार के प्रावधानों के तहत वयस्कता की आयु 18 वर्ष करे लेकिन नैतिक मूल्यों के पतन से ग्रस्त सामाजिक विघटन के दौर में भारतीय कानून निर्माताओं ने वयस्कता की उम्र 18 वर्ष करके निश्चय ही बहुत बड़ी भूल कर दी है। दरअसल उक्त प्रावधान 18 वर्ष की उम्र तक बाल अधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से बनाए गए हैं परन्तु इन्हीं के तहत नाबालिग अपराधियों को कड़ी सजा से सुरक्षा प्रदान कर दी गई है।

निरंतर बढ़ते तकनीकी विकास, टेलीविजन, मोबाइल और इंटरनेट जैसे सशक्त और प्रभावकारी संचार माध्यमों के चलते नई पीढ़ी के बच्चे बाहरी दुनिया की अच्छी बुरी हकीकत से भलीभांति वाकिफ हैं। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि अब बच्चे शारीरिक और मानसिक रूप से अपेक्षाकृत जल्दी परिपक्व हो रहे हैं। प्रसिद्ध प्राणी वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन का सिद्धांत भी यही कहता है कि निरंतर जारी क्रमविकास केवल शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक स्तर पर भी जारी है। इसके स्पष्ट संकेत हमारे इर्द-गिर्द ही मौजूद हैं।

स्कूल सिलेबस के लगातार बढ़ते बोझ के बावजूद आजकल बच्चों के बेहतरीन प्रदर्शन की क्षमता बढ़ती जा रही है और पिछले जमाने के चमकदार 90 फीसदी अंक अब अति सामान्य समझे जाते हैं। दसवीं और बारहवीं की बोर्ड परीक्षाओं में 99.9 प्रतिशत में भी होड़ मची हुई है तथा हजारों छात्रों को कई विषयों में 100 प्रतिशत अंक प्राप्त होते हैं। केवल पढ़ाई ही नहीं बल्कि विभिन्न कलाओं तथा



कौशल में पारंगत होने एवं करियर चुनने से लेकर जीवनसाथी चुनने तक के मामलों में स्वतंत्र सोच समझ अब बचपन में ही दिख जाती है।

घर-घर में टेलीविजन, कम्प्यूटर, वीडियोगेम और इंटरनेट की आसान उपलब्धता ने बच्चों के लिए दुनिया के दरवाजे खोल दिए हैं और अच्छे बुरे का भेद करना उनके लिए आसान हो गया है। भले ही बच्चे घर की चहारदीवारी के भीतर हों मगर उनके भीतर आक्रामकता के बीज बोने के साधन घर में ही मौजूद हैं। छोटी-छोटी चुहलबाजियों से गुदगुदाने वाले मिकी माउस की जगह अब तलवार लहराने वाले समुराई जैक और निन्जा हटोरी ने ले ली है। वीडियो गेम की दुनिया भी रोमांच, उत्तेजना और हिंसा से भरपूर है। मानसिक कसरत और मनोरंजन से शुरू होने वाले वीडियो गेम आजकल अत्यंत तेज बाइक व कार रेस, आतंकवाद, युद्ध और हत्या तक पहुंच गए हैं जिनमें हिंसा और आक्रामकता का अतिरेक है। इन सब तकनीकी संसाधनों के उपयोग का सीधा असर बच्चों के मानसिक विकास और सामाजिक व्यवहार में देखा जा सकता है। तकनीकी विस्फोट के इस दौर में 18 वर्ष तक बच्चों को “अबोध” समझना कानून की गंभीर भूल है और इसमें शीघ्र सुधार की जरूरत है।

अब जब नाबालिग लड़के गंभीर अपराध करके बाल-अधिकार के नाम पर मामूली सजा हासिल करके छूट रहे हैं तब सुधारगृह से बाहर आकर वे समाज के लिए खतरा बनते जा रहे हैं। नाबालिग अपराधियों से पीड़ित व्यक्तियों के मानवाधिकार का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण होता जा रहा है और उन नाबालिग बालिकाओं के मानवाधिकार की रक्षा कैसे होगी जिनके साथ नाबालिग लड़के बलात्कार कर रहे हैं। वास्तव में किसी भी अपराधी को नाबालिग होने का लाभ केवल उसी परिस्थिति में दिया जाना चाहिए जब उसने नाबालिग जैसा व्यवहार किया हो मसलन अज्ञानतावश और अतिरेक में किए गए अपराध। परन्तु

डकैती, बलात्कार और साजिशपूर्ण अपहरण एवं हत्या आदि के अपराधों में नाबालिगों को उम्र का लाभ दिया जाना अपराध से पीड़ित व्यक्तियों के मानवाधिकार का हनन करने के समान है।

एक गंभीर सामाजिक प्रश्न यह है कि यदि किसी भी अपराध में अपराधी के साथ अपराध के लिए प्रेरित करने वाले को भी सजा देने का प्रावधान है तो क्या नाबालिग अपराधिक के माता-पिता अथवा अभिभावक को भी कानून के दायरे में नहीं लाना चाहिए जिन्होंने कुशिक्षा या उपेक्षा के जरिए नाबालिग को अपराधी बनाने में सहयोग किया हो।

आधुनिक अतिविकसित सूचनातंत्र के जरिए अब ‘समझदार’ नाबालिगों को भलीभांति पता चल गया है कि हमारे कानून ने उनको 18 वर्ष की उम्र तक अपराध करने की सहूलियत दे रखी है। शायद पिछले दशक में नाबालिग अपराधियों की संख्या में 65 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की असल वजह नाबालिगों का यही ‘ज्ञान’ है। वो दिन दूर नहीं जब अंडरवर्ल्ड के बड़े-बड़े सरगना हमारे अपाहिज कानून की आड़ लेकर नाबालिगों से गंभीर अपराध करवाने लगे अथवा कई मां-बाप ही अपने बच्चों को अपराध करने के लिए प्रेरित करने लगे।

नाबालिग अपराधियों की बढ़ती तादाद एक गंभीर सामाजिक संकट है और इससे निपटने के लिए हमारे तंत्र को कड़े कदम उठाना होंगे। जरूरत है कि वयस्कता की उम्र को अपराधिक मामलों हेतु तार्किक रूप से कम किया जाए तथा बलात्कार, हत्या, डकैती व अपहरण जैसे जघन्य अपराधों में उम्र की कोई छूट हासिल न हो। अगर जल्द ही नाबालिग अपराधियों हेतु कानूनी प्रावधानों में वांछित तथा व्यावहारिक सुधार नहीं किया गया तो हम अपने आपको दुर्दांत बाल अपराधियों से घिरे समाज में पाएंगे।

(लेखक जबलपुर में चिकित्सक एवं विधि के ज्ञाता हैं)

□ □ □



तालाबों और बावड़ियों द्वारा जल संरक्षण गांवों की एक सहज परंपरा थी जो आज छिन्न-भिन्न हो चुकी है

पानी की बूंदों की चिंता कीजिए

● अनुपम मिश्र



जल संरक्षण के पारंपरिक तरीके आज भी उतने ही कारगर हैं। हजारों तालाब अचानक प्रकट नहीं हुए थे। इनके पीछे एक इकाई थी बनवाने वालों की, तो दहाई थी बनाने वालों की। यह इकाई, दहाई मिलकर सैकड़ों हजार बनती थी। नए समाज ने इस संख्या को शून्य ही बना दिया है। इस नए समाज में इतनी उत्सुकता भी नहीं बची कि यह जाने कि इससे पहले के दौर में इतने सारे तालाब कौन बनाता था? किसने समाज में इस तरह के काम करने के लिए ढांचा खड़ा किया था?



ब | रसात से पहले शहरों और गांवों में बूंद-बूंद के लिए हाहाकार मचा रहता है। विडंबना तो यह है कि इस विकराल समस्या को गंभीरता से नहीं लिया जाता है। सरकारों के साथ आम जन में भी जल संरक्षण के प्रति संजीदगी दिखाई नहीं देती है। शायद लोगों को लगता है कि उनके प्रयास से कुछ नहीं होने वाला है। जमीन पर लगातार कांक्रीट की चादर बिछाई जा रही है, जिसके कारण भूमि में पानी के रिसाव पर पहरा लग गया है। प्रकृति के अत्याधिक दोहन से धरती का गर्भ सूखता ही जा रहा है।

वारिश से पहले पाल बांधने वाला समाज आज बांधों के भंवर में फंस गया है। यही कारण है कि सूखे को झेलने वाला राजस्थान का बाड़मेर बाढ़ के थपेड़ों को सहने को मजबूर है। बिहार को तारने वाले यह बांध अब उसको भी डुबाने लगे हैं। अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में आने वाली इन प्राकृतिक समस्याओं का इलाज है। किसी समय सामुदायिक जल प्रबंधन के तहत लोग वारिश की बूंदों को सहेजने के लिए अपने घर की छत के जल को नीचे एक कुंड में साफ-सुथरे तरीके से एकत्र करते थे। बरसात का

पानी खेत की फसल की जरूरत को पूरा करने के साथ अन्य क्षेत्रों के जल के साथ पास के तालाब में इकट्ठा होता था। बाद में इस जल से खेती और घरेलू जल की जरूरतें पूरी की जाती थीं। रेगिस्तानी भूमि में करीब पांच छह फुट नीचे चूने की परत बरसाती पानी को रोके रहती थी। बाद में इसका उपयोग पीने व अन्य कामों के लिए किया जाता था। इस तरह सूखे की मार में यह पाल-ताल समाज को बचाकर रखते थे। अब हम इस तरह सामुदायिक जल प्रबंधन को भूलकर राज्य या भारत सरकार के बनाए बांधों की ओर देखने लगे हैं। ये बांध जहां नदियों को बांधकर उनकी हत्या करते हैं। वहीं, दूसरी ओर बाढ़ लाकर कहर बरपाते हैं।

बांध बनने से सामान्य वर्षों में जनता को लाभ मिलता है। लेकिन, बाढ़ आने पर पानी बांध को तोड़कर एकाएक फैलता है। कभी-कभी इसका प्रकोप इतना भयंकर होता है कि चंद घंटों में दस-बारह फुट तक बढ़ जाता है और जनजीवन को तबाह करके रख देता है। बांध बनने से सिल्ट फैलने की बजाए, बांधों के बीच जमा हो जाती है। इससे बांध का क्षेत्र ऊपर उठ जाता है। जब बांध टूटता है



उत्तराखंड में भागीरथी पर बांध, दिल्ली में यमुना में खेलगांव-मेटो आदि का निर्माण, उत्तर प्रदेश में गंगा एक्सप्रेस वे नाम का तटबंध, बिहार और बंगाल में क्रमशः पहले से ही बंधी कोसी और हुगली जैसी नदियों को कैद करने का काम ही है। नदी और भूमि की मुक्ति के लिए पिछले कई वर्षों से संघर्ष जारी है लेकिन सरकारें हैं कि बिना सोचे विचारे अपनी जिद पर अड़ी हुई हैं।

तो यह पानी वैसे ही तेजी से फैलता है जैसे मिट्टी का घड़ा फूटने पर बांधों से पानी के निकास के रास्ते अवरुद्ध हो जाते हैं। दो नदियों पर बनाए बांधों के बीच पचास से सौ किलोमीटर का एरिया कटोरानुमा हो जाता है। बांध टूटने पर पानी इस कटोरेनुमा क्षेत्र में इकट्ठा हो और इसका निकलना मुश्किल हो जाता है। इससे बाढ़ का प्रकोप शांत होने में काफी समय लगता है। इन समस्याओं के चलते बांध बनने से परेशानियां बढ़ी हैं। जाहिर है बांध बनाने की वर्तमान पद्धति कारगर नहीं है। सामुदायिक जल प्रबंधन होने से पाल-ताल बनने बंद हो गए हैं, जिससे हमें हर साल बाढ़ आपदा से दो-चार होना पड़ रहा है। सरकार को

चाहिए कि अंधाधुंध बांध बनाने की वर्तमान नीति पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। पहले विकल्प में नदियों के पर्यावरणीय प्रवाह को बरकरार रखा जाना चाहिए। दूसरा विकल्प ऊँचे और स्थायी बांध बनाने की वर्तमान नीति का है। तीसरा विकल्प प्रकृतिग्रस्त बाढ़ के साथ जीने के लिए लोगों को सुविधा मुहैया कराने का है। इसमें फ्लड रूफिंग के लिए ऊँचे सुरक्षित स्थानों का निर्माण, सुरक्षित संचार एवं पीने के पानी की इत्यादि की व्यवस्था शामिल है, जिससे बाढ़ के साथ जीवित रह सकें। धरती के ऊपर बड़े बांधों से अति गतिशील बाढ़ का प्रकोप बढ़ने लगा है। इसे रोकने के लिए जल का अविरल प्रवाह को बनाए रखना होगा। इस काम से ही जल के सभी भंडारों को भरा रखा जा सकता है। चूँकि, बाढ़ और सूखा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए इन दोनों के समाधान जल का सामुदायिक जल प्रबंधन ताल-पाल और झाल से ही संभव है।

15 अगस्त 1947 को मिली आजादी में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जिस आजाद भारत की परिकल्पना की थी उसमें प्रकृति को कैद करने की ख्वाहिश नहीं थी। गांधी के सपने में एक ऐसे भारत की परिकल्पना थी जो देश की प्रकृति और उसके साथ जीने वाले ग्रामीण को उसका स्वराज और सुराज दोनों दिलाएगा। एक ऐसा भारत जहां समाज और प्रकृति को अपनी जरूरत की पूर्ति करने वाले उपहार के तौर पर देखेगा, न कि लालच की पूर्ति करने वाले खजाने के तौर पर। लेकिन, पिछले 64 वर्षों के आजाद भारत के सफरनामे में ऐसा नहीं हुआ। जिस देश में नदियों को कैद करने के लिए दिन-प्रतिदिन एक नई कोशिश चल रही है। ऐसे में 15 अगस्त के दिन स्वतंत्रता अदायगी से ज्यादा कुछ नहीं है। यदि भारत की आजादी को गौरवशाली बनाकर रखना है तो हमें अपनी नदियों के प्रवाह को शुद्ध-सदानीरा, नैसर्गिक और आजाद बनाना होगा। नदियों की आजादी का रास्ता नदी तट पर फैली उसकी बाजुओं की हरियाली में छुपा है। भारत की आजादी, बाघ और जानवरों की आजादी रखने वाले जंगलों को बचाने और नदियों के स्वच्छंद बहाव से ही कायम रहेगी।



नदियों के किनारे सघन और स्थानीय जैव विविधता का सम्मान करने वाली हरित पट्टियों का विकास से संभव है। लेकिन यह तभी संभव हो सकता है जब नदियों की भूमि अतिक्रमण और प्रदूषण से मुक्त हो। नदी भूमि का हस्तान्तरण और रूपांतरण रुके।

उत्तराखंड में भागीरथी पर बांध, दिल्ली में यमुना में खेलगांव-मेटो आदि का निर्माण, उत्तर प्रदेश में गंगा एक्सप्रेस वे नाम का तटबंध, बिहार और बंगाल में क्रमशः पहले से ही बंधी कोसी और हुगली जैसी नदियों को कैद करने का काम ही है। नदी और भूमि की मुक्ति के लिए पिछले कई वर्षों से संघर्ष जारी है लेकिन सरकारें हैं कि बिना सोचे विचारे अपनी जिद पर अड़ी हुई हैं।

आज भी हमारे ताल-तल्लैये झीलों और नदियों को भरापूरा रखने वाली वर्षा के सालाना औसत में बहुत कमी नहीं आई है। जल संरक्षण के नाम पर धन राशि कोई कम खर्च नहीं हुई। जल संरक्षण को लेकर अच्छे कानून और शानदार अदालती आदेशों की भी एक नहीं अनेक मिसाल हैं। वर्षा जल के संचय की तकनीक और उपयोग में अनुशासन की जीवन शैली तो हमारे गांव का कोई गंवार भी आपको सिखा सकता है। लेकिन, ये हमारी आंखों का पानी नहीं ले जा सकते। भारतीय संस्कृति में समाज को प्रकृति के अनुकूल अनुशासित जीवनशैली हेतु निर्देशित व प्रेरित करने का दायित्व धर्मगुरुओं का था। तदनुसार समाज पानी के काम को धर्मार्थ का आवश्यक व साझा काम मानकर किया करता था। इसके लिए महाजन धन शासक भूमि व संरक्षण प्रदान करता था। आज सभी अपने-अपने दायित्व से विमुख हो गए हैं। स्वयं धर्मगुरुओं के आश्रमों का कचरा नदियों में जाता है समाज सोच रहा है हम सरकार को वोट और नोट देते हैं अतः सब कुछ सरकार करेगी। सरकारें हैं कि इनमें पानी के प्रति प्रतिबद्धता कहीं दिखाई नहीं दे रही। सरकारी योजनाओं के पैसे से बेईमान अपनी तिजोरियां भर रहे हैं। वरना एक अकेले मनरेगा के कार्य ही देश को तालाबों का उद्धार कर देते।

इतिहास के झरोखे से : जल संरक्षण के पारंपरिक तरीके आज भी उतने कारगर हैं, सैकड़ों, हजारों तालाब अचानक शून्य से प्रकट नहीं हुए थे। इनके पीछे एक इकाई थी बनवाने वालों की तो दहाई थी बनाने वालों की। यह इकाई, दहाई मिलकर सैकड़ों हजार बनती थी। पिछले दो सौ बरसों में नए किस्म की थोड़ी सी पढ़ाई पढ़ गए समाज ने इस इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार को शून्य ही बना दिया है। इस नए समाज में इतनी उत्सुकता ही नहीं बची कि इससे पहले के दौर में इतने सारे तालाब कौन बनाता था। उसने इस तरह के काम को करने के लिए जो ढांचा खड़ा किया था। आईआईटी का, सिविल इंजीनियरिंग का, उस पैमाने से, उस गंज से भी उसने पहले हो चुके इस काम को नापने की कोई कोशिश नहीं की।

एकदम महाभारत और रामायण के तालाबों को अभी छोड़ दें तो भी कहा जा सकता है कि कोई पांचवीं सदी से पंद्रहवीं सदी तक देश के इस कोने से उस कोने तक तालाब बनते ही चले आए थे। कोई एक हजार वर्ष तक आबाध गति से चलती रही इस परंपरा में पंद्रहवीं सदी के बाद कुछ बाधाएं आने लगी थीं। पर, उस दौर में भी यह धारा पूरी तरह से रुक नहीं पाई, सूखा नहीं पाई। समाज ने जिस काम को इतने लंबे समय तक बहुत व्यवस्थित रूप में किया था। उस काम को उथल-पुथल का वह दौर भी पूरी तरह से मिटा नहीं सका। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के अंत तक भी जगह-जगह पर तालाब बन रहे थे। लेकिन, फिर बनाने वाले लोग भी धीरे-धीरे कम होते गए। गिनने वाले कुछ जरूर आ गए, पर जितना बड़ा काम था उस हिसाब से गिनने वाले बहुत ही कम थे और कमजोर भी। इसलिए ठीक गिनती भी कभी भी नहीं हो पाई। धीरे-धीरे टुकड़ों में तालाब गिने गए पर सब टुकड़ों को कुल मेल कभी बिठाया नहीं गया। लेकिन इन टुकड़ों की झिलमिलाहट समग्र चित्र की चमक दिखा सकती है। बस हम पानी की बूंदों को सहेजना प्रारंभ करें।

(लेखक पानी बचाओ अभियान के प्रणेता हैं।

साभार : पीपुल्स समाचार)





मध्यप्रदेश सरकार के प्रयासों से लिंग परीक्षण के प्रति जो जागरूकता आई है वह उल्लेखनीय है

स्त्री के अधिकारों की आवाज

● स्वाति तिवारी

भारतीय कानून कई विषयों में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील हैं एवं जनहित से जुड़े हैं पर विडम्बना यह है डबलिन आयरलैंड की संसद ने सविता की मृत्यु के बाद गर्भ के दौरान जीवन रक्षा विधेयक को मान्यता दी, जबकि वह हमारे यहां पहले से उपलब्ध है। लेकिन यह भी सच है कि भारतीय समाज अपने कानूनों का सम्मान ना करते हुए उसमें उपलब्ध प्रावधानों का कितना और कैसा दुरुपयोग करता है यह सब जानते हैं।

मा | तत्व स्त्री का नैसर्गिक अधिकार है। स्त्री का यह अधिकार सदा सुरक्षित रहना चाहिए। लेकिन इसे आधुनिक परिस्थितियों में परिभाषित करना बेहद जटिल काम है। जीवन और सभ्यता के विकास के साथ इसमें कई पेचीदगियां भी आई हैं। समाज में जब स्त्री समानता की बात की जाती है तो उसका अपने लिए निर्णय लेने का मानवीय अधिकार भी साथ ही मिलता है। इसलिए स्त्री का यह अधिकार भी अपने पास सुरक्षित रखना चाहती है कि वह गर्भधारण करना चाहती है या नहीं। इसमें बहुत सी बातें परिस्थितिजन्य हैं। जैसे कि यदि गर्भ ठहर गया है तो वह गर्भ को रखना चाहती है या नहीं। सहज और स्वाभाविक रूप से प्रकृति ने स्त्री को जो सृजन क्षमता दी है वह उसका ही अधिकार है किन्तु उसके इस अधिकार को सुरक्षित रखने की जो दिक्कतें आती हैं उनको समाज में समझने की कितनी कोशिश होती है।

हमारा कानून इस संदर्भ में बहुत संवेदनशील है। यहां उल्लेख करना उपयुक्त होगा। गर्भपात का कानून (गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम, 1971) गर्भवती स्त्री कानूनी तौर पर गर्भपात निम्नलिखित स्थितियों में करवा सकती है - 1. जब गर्भ की वजह से महिला की जान को

खतरा हो। 2. महिला के शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य को खतरा हो। 3. गर्भ बलात्कार के कारण ठहरा हो। 4. बच्चा गंभीर रूप से विकलांग या अपाहिज पैदा हो सकता हो। 5. महिला या पुरुष द्वारा अपनाया गया कोई भी परिवार नियोजन का साधन असफल रहा हो। यदि इनमें से कोई भी स्थिति मौजूद हो तो गर्भवती स्त्री एक डॉक्टर की सलाह से बारह हफ्तों तक गर्भपात करवा सकती है। बारह हफ्ते से ज्यादा तक बीस हफ्ते (पांच महीने) से कम गर्भ के गिरवाने के लिए दो डॉक्टर की सलाह लेना जरूरी है। बीस हफ्तों के बाद गर्भपात नहीं करवाया जा सकता है। गर्भवती स्त्री से जबर्दस्ती गर्भपात करवाना अपराध है। धारा 313 स्त्री की सम्मति के बिना गर्भपात कारित करने के बारे में कहा गया है कि इस प्रकार से गर्भपात करवाने वाले को आजीवन कारावास या जुर्माने से भी दण्डित किया जा सकता है।

मध्यप्रदेश और देश के संदर्भ में हम लिंगानुपात की समस्या को समझ सकते हैं। सरकार के प्रयासों से लिंग परीक्षण के प्रति जो जन जाग्रति आई है वह उल्लेखनीय है। प्रदेश में गर्भपात कराने पर प्रभावी रोक को देखा जा



सकता है। इसके लाभ आने वाले समय में दिखाई देंगे। लेकिन हम स्त्री के अधिकारों की तरफ से पश्चिमी दुनिया को देखें तो यहां स्त्री आज भी संघर्ष की स्थिति में है।

इस विषय को विस्तार देते हुए आयरलैण्ड की घटना को उदाहरण स्वरूप रखें तो कई चीजें स्पष्ट हो जाएंगी। विगत वर्ष आयरलैंड में भारतीय मूल की सविता की गर्भ संबंधी समस्या से मौत हो गई थी। आयरलैण्ड एक कैथोलिक देश है जहां अब तक गर्भपात कानूनन एक जुर्म है। 31 साल की सविता हलप्पनवर की अक्टूबर, 2012 समय पर गर्भपात न किए जाने के कारण मौत हो गई थी। इसके बाद से ही आयरलैण्ड में लम्बी बहस चली कि विशेष परिस्थितियों में गर्भपात की संवैधानिक इजाजत दी जानी चाहिए। इस मुद्दे पर कैथोलिक मान्यता वाले आयरलैण्ड में गर्भपात को वैध बनाने के विधेयक पर संसद में रातभर बहस चली। सविता की मौत के बाद भारत सहित दुनियाभर में आयरलैण्ड को कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा था। और किसी महिला के जीवन पर संकट को देखते हुए देश में गर्भपात कानून की इजाजत दिए जाने की मांग थी। आयरलैण्ड की संसद ने दो दिन लम्बी बहस के बाद विशेष परिस्थितियों में गर्भपात को मान्यता दे दी।

अमेरिका में इन दिनों गर्भपात कानून सख्त है। गर्भपात कानून सख्त है। गर्भपात पर रोक के बारे में अभी तक 300 से अधिक विधेयक प्रस्तावित किए जा चुके हैं। यहाँ 13 राज्यों ने गर्भपात को लेकर नई सीमा रेखाएं तय की हैं। चिली में इन दिनों इसी विषय पर राष्ट्रीय बहस चल रही है। लातिन अमेरिका के चिली में भी गर्भपात कराना कानूनी जुर्म है। बहस का कारण एक ग्यारह साल की बच्ची है जो 14 हफ्ते की गर्भवती है। वहाँ के चिकित्सकों ने उसके गर्भधारण को किशोरी एवं उसके गर्भस्थ शिशु के जीवन को खतरा बताया है। चिकित्सकों की राय के बाद बच्ची के गर्भपात की इजाजत दे दी गई है। लेकिन इस इजाजत ने लातिन जैसे रूढ़िवादी देश में एक बहस छेड़ दी है। 11 साल की यह बच्ची बलात्कार की शिकार हुई थी।



भारत के सन्दर्भ में अगर हम बात करें तो यहां कन्या भ्रूण हत्या एक बड़ा और विडम्बनापूर्ण मुद्दा है, जो गर्भपात के अधिकार को विवादित रूप से प्रभावित करता है। लेकिन हमारे यहां गर्भपात करवाने की कानूनी दिक्कतों का निर्धारण एम.टी.पी. (चिकित्सपरक पतन एक्ट) के साथ किया गया है। भारत में गैर कानूनी गर्भपात की समस्या रोकने के उद्देश्य से इस एक्ट की संरचना की गई है।



बच्ची के साथ उसकी मां के ही पुरुष मित्र ने दो वर्षों तक लगातार बलात्कार किया था। लातिन अमेरिका में 1973 में जनरल अगस्ते पिनोशे के कार्यकाल में गर्भपात पर रोक लगा दी गई थी।

स्त्री के इस अधिकार के पक्ष में अमेरिका सीनेटर वेडी डेविस पूरी शिद्दत के साथ संघर्षरत हैं। पचास वर्षीय वेडी अमेरिका के फोर्ट वर्थ की डेमोक्रेट सीनेटर हैं। उन्होंने टेक्सास की सीनेट में लगातार 11 घण्टे तक गर्भपात के हक में अपनी बात रखी। वेडी के इस धाराप्रवाह के वैचारिक भाषण ने उस विधेयक को भी पारित होने से रुकवा दिया जिसके तहत उनके राज्य में 20 हफ्ते की गर्भवती महिला के गर्भपात पर पाबंदी लगाई जाने वाली थी।



भारतीय कानून कई विषयों में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील हैं एवं जनहित से जुड़े हैं पर विडम्बना यह है डबलिन आयरलैंड की संसद ने सविता की मृत्यु के बाद गर्भ के दौरान जीवन रक्षा विधेयक को मान्यता दी वह हमारे यहां पहले से उपलब्ध है। लेकिन भारतीय समाज अपने कानूनों का सम्मान ना करते हुए उसमें उपलब्ध प्रावधानों का कितना और कैसा दुरुपयोग करता है यह सब जानते हैं।

वेंडी ने स्त्री अधिकारों के पक्ष में अपनी बात रखते हुए कहा यदि औरतों से गर्भपात कराने का चिकित्सा सम्मत अधिकार छीन लिया गया तो औरतों को किस-किस तरह की परेशानियां आ सकती हैं।

भारत के सन्दर्भ में अगर हम बात करें तो वहां कन्या भ्रूण हत्या एक बड़ा और विडम्बनापूर्ण मुद्दा है, जो गर्भपात के अधिकार को विवादित रूप से प्रभावित करता है। लेकिन हमारे यहां गर्भपात करवाने की कानूनी दिक्कतों का निर्धारण एम.टी.पी. (चिकित्सपरक पतन एक्ट) के साथ किया गया है। भारत में गैर कानूनी गर्भपात की समस्या रोकने के उद्देश्य से इस एक्ट की संरचना की गई है।

भारतीय कानून में लिंग परीक्षण एवं कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए गर्भपात पर रोक है। लेकिन एम.टी.पी. एक्ट के अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण तथ्य हैं जिन कारणों से महिला गर्भपात करवा सकती हैं। जैसे महिला को कोई गम्भीर रोग हो और गर्भ रखने से उसको जान का खतरा हो जैसे हृदय रोग, कैंसर, मिर्गी, मेल्लिब्स, डायबिटिस,

मनोवैज्ञानिक रोग, उच्चतम रक्तचाप इत्यादि गर्भपात का दूसरा कारण जहां गर्भ को धारण किए रहने से नवजात को भारी खतरा हो, बच्चे को शारीरिक या मानसिक अपंगता की आशंका हो। जैसे - बच्चे को दीर्घकालीन बीमारियां, पहले तीन महीनों में मां को रूबेला इन्फेक्शन जो जर्मन मीसलस कहलाता है या गर्भस्थ बच्चे को जन्मजात अप्राकृतिक विकृति हो या आर.एच. इसो-इम्युनाइसेशन। इसके अलावा बलात्कार के परिणामस्वरूप गर्भधारण की स्थिति में भारतीय कानून गर्भपात की अनुमति देता है। इसके अतिरिक्त ऐसी सामाजिक आर्थिक परिस्थितियां जो मां के स्वस्थ गर्भ विकास और स्वस्थ बच्चे के जन्म में बाधक हो। इसके अतिरिक्त गर्भ निरोधक की असफलता चाहे जिस भी माध्यम का उपयोग किया गया हो। यह परिस्थिति भारतीय कानून की विलक्षण विशेषता है अर्थात् अवांछित गर्भावस्था के कारण इन परिस्थितियों में गर्भपात कराया जा सकता है। भारतीय कानून की यह एक और विशेषता है कि यदि स्त्री अठारह वर्ष से ऊपर है तो स्वयं अनुमति दे सकती है। यदि कम उम्र है तो उसे अपनी संरक्षक की लिखित अनुमति की जरूरत होती है।

भारतीय कानून कई विषयों में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील हैं एवं जनहित से जुड़े हैं पर विडम्बना यह है डबलिन आयरलैंड की संसद ने सविता की मृत्यु के बाद गर्भ के दौरान जीवन रक्षा विधेयक को मान्यता दी वह हमारे यहां पहले से उपलब्ध है। लेकिन भारतीय समाज अपने कानूनों का सम्मान ना करते हुए उसमें उपलब्ध प्रावधानों का कितना और कैसा दुरुपयोग करता है यह सब जानते हैं। यह सामाजिक सरोकारों का मुद्दा है। समाज के हित में है और स्त्री के स्वास्थ्य व अस्तित्व से जुड़ा है। स्त्री लिंगानुपात में लगातार घटती लड़कियों की संख्या से स्पष्ट हो जाता है। यदि नैतिकता के आधार पर वे डॉक्टर्स जो व्यावसायिक दृष्टि को अपने व्यावहारिक सामाजिक सरोकारों से जोड़ लें तो हमारे कानूनी प्रावधानों की रक्षा हो सकती है। वरना एक दिन शायद हमें भी कानूनी सख्ती होने पर वेंडी जैसी लड़ाई लड़नी पड़ सकती है।

(लेखिका साहित्यकार हैं। साभार : पीपुल्स समाचार)





दुकानों में बिकती शिक्षा कहां ले जाएगी

● जगमोहन सिंह राजपूत

जो विश्वविद्यालय या बड़े संस्थान प्रारंभ से ही ईमानदार लक्ष्यों, स्वीकार्य मानवीय मूल्यों को त्याग चुके हों वहां यह अपेक्षा कितनी बेमानी है कि वे अपने छात्रों में मानव मूल्यों का विकास कर सकेंगे या समाज के लिए अपने कार्यों तथा योगदान से सहायक हो सकेंगे? कुल मिलाकर प्रश्न चरित्र निर्माण का है और उसका गुणवत्ता तथा कार्य संस्कृति से सीधा संबंध है। यदि विश्वविद्यालय शिक्षा की गुणवत्ता स्तरीय होती तो स्कूलों में अध्यापन तथा मूल्य विकास भी उसी अनुपात में होता। स्कूल शिक्षा विभाग से लेकर मानव संसाधन विकास मंत्रालय तक एक उत्तरदायी व्यवस्था होती

पुणे के फर्ग्युसन कॉलेज में नरेंद्र मोदी जब शिक्षा पर किए जा रहे बजट प्रावधान पर भारत तथा चीन की तुलना कर रहे थे तभी यह तय हो गया था कि इसका आक्रोश भरा प्रतिवाद अवश्य आएगा - आया भी। तथ्य यह है कि आज भारत तथा चीन की तरफ दुनिया आंखें फाड़ कर देख रही है और इन दोनों के हर क्षेत्र में विकास पर इस प्रकार की तुलना सभी-देश में तथा विदेश में लगातार कर रहे हैं। भारत के राष्ट्रपति ने 12 जुलाई 2013 को जयपुर के एक दीक्षांत समारोह में इस बात पर बल दिया कि शोध तथा नवाचार में अधिक सरकारी तथा गैरसरकारी निवेश आवश्यक हैं। उन्होंने यह भी कहा कि इस समय भारत अपने जीडीपी का केवल 0.9 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय कर रहा है जो चीन, ब्रिटेन, इस्त्राइल से काफी कम है। निजी क्षेत्र शोध तथा नवाचार पर देश के कुल खर्च में केवल एक-चौथाई भागीदारी करता है। शोध तथा नवाचार आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करते हैं तथा प्रशासनिक क्षमता, कार्य निष्पादन और बाजार की प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं। उच्च शिक्षा संस्थान, जो

ज्ञान तथा कौशल के नए आयाम ढूंढने तथा उनका उपयोग करने के केंद्र माने जाते हैं, इस उत्तरदायित्व को निभाने में सक्षम माने जाते हैं। लेकिन वे भी शोध तथा नवाचार में वह स्थान नहीं बना सके, जिसकी अपेक्षा शायद सारा देश तथा विश्व भी कर रहा है।

केंद्रीय विश्वविद्यालय, आई.टी.आई. तथा आईआईएम शीर्षस्थ संस्थान हैं जहां विश्वस्तरीय नवाचार तथा शोध अपेक्षित हैं। इनकी संख्या भी पिछले सालों में बढ़ी है तथा केंद्र सरकार इसे बड़ी उपलब्धि मानती है। अभी नए केंद्रीय विश्वविद्यालयों में शोध कार्य के लिये प्रवेश लेने के इच्छुक प्रत्याशियों के चयन की प्रवेश परीक्षा आयोजित की गई - यानी उन युवाओं का चयन होना था जो आगे चलकर देश में शोध तथा नवाचार का नेतृत्व कर सकें। यह विश्वविद्यालय वह परीक्षा भी उचित स्तर पर नहीं करा सके। प्रश्नपत्र अवश्य ही किसी विद्वान या विद्वानों ने बनाया होगा। उसमें प्रसार भारती को आकाश भारती बताया गया था, बी.जी. वर्गीज को सी.जी. वर्गीज कहा गया, सास-बहू धारावाहिकों को महत्वपूर्ण मानकर



आई.आई.टी. की प्रवेश परीक्षा में पहले अर्हता कक्षा बारह की परीक्षा साठ प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण करने की थी। पिछले सात-आठ वर्षों में सीबीएसई ने केंद्र सरकार के आदेशों का पालन करते हुए बस्ते का बोझ तथा परीक्षा के तनाव को कम करने के नाम पर अनेक संशोधन किये। नतीजा, अब दिल्ली विश्वविद्यालय के अनेक महाविद्यालयों में कट ऑफ 99, 100 प्रतिशत तक पहुंच गया है। आई.आई.टी. की अर्हता अब साठ प्रतिशत के स्थान पर ऊपर का बीस परसेंटाइल कर दिया गया है।



उन पर प्रश्न पूछे गए। ऐसी स्थिति में सामान्य रूप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन विश्वविद्यालयों में गुणवत्ता पर कितना ध्यान दिया जा रहा है तथा वहां की बौद्धिक संपदा का स्तर तथा परिमाण किस स्तर पर होगा।

आई.आई.टी. की प्रवेश परीक्षा में पहले अर्हता कक्षा बारह की परीक्षा साठ प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण करने की थी। पिछले सात-आठ वर्षों में सीबीएसई ने केंद्र सरकार के आदेशों का पालन करते हुए बस्ते का बोझ तथा परीक्षा के तनाव को कम करने के नाम पर अनेक संशोधन किये। नतीजा, अब दिल्ली विश्वविद्यालय के अनेक महाविद्यालयों में कट ऑफ 99-100 प्रतिशत तक पहुंच गया है। आई.आई.टी. की अर्हता अब साठ प्रतिशत के स्थान पर ऊपर का बीस परसेंटाइल कर दिया गया है। अब यह नए

प्रकार के तनाव को बढ़ा रहा है - आई.आई.टी. परीक्षा में उत्तीर्ण छात्र, 91 प्रतिशत अंक कक्षा बारह में, मगर बीस परसेंटाइल के बाहर। माता-पिता तथा प्रत्याशी इससे कैसे पार पा सकेंगे? एक और उदाहरण लें - दिल्ली विश्वविद्यालय में चार वर्षीय पाठ्यक्रम के लागू करने को लेकर जो उठा-पटक होती रही है, उसका प्रभाव देश भर के उच्च शिक्षा संस्थानों की कार्य संस्कृति पर पड़ेगा ही। इन संस्थानों में अध्यापकों-प्राध्यापकों के औसतन चालीस प्रतिशत पद रिक्त हैं। राज्य सरकारों के नियंत्रण के विश्वविद्यालयों में अनेक ऐसे हैं जहां 60-70 प्रतिशत पद रिक्त हैं। नई नियुक्तियों पर रोक है तथा नेताओं तथा नौकरशाहों का नियंत्रण विश्वविद्यालयों की स्वायत्ता का मखौल उड़ते रहता है। कुलपतियों की नियुक्तियां योग्यता तथा श्रेष्ठता के आधार पर शायद ही अपवादस्वरूप होती हों, अधिकांश तो जाति, धर्म, क्षेत्रीयता, राजनीतिक संरक्षण तथा वैचारिक प्रतिबद्धता के आधार पर ही होती हैं। इस स्थिति को बदलने के कोई प्रयास अभी तो दिखाई नहीं देते हैं।

सरकार उच्च शिक्षा में लगातार पीछे हट रही है, निजी 'उद्यमी' आगे आ रहे हैं, डीम्ड विश्वविद्यालय स्थापित कर रहे हैं। लोगों का ध्यान अपनी असमर्थता से हटाने के लिए कपिल सिब्बल बाहरी विश्वविद्यालयों के भारत में परिसर स्थापित करने का झुनझुना बजाते रहे। वे तो दूसरे मंत्रालय में चले गए और लोगों को याद भी नहीं है कि उनके एक दर्जन से अधिक विधेयकों का क्या हुआ? लोगों को यह अवश्य याद है कि 2009 में उन्होंने मानद विश्वविद्यालयों को नियंत्रित करने के लिए एक त्वरित समिति बनाई, 44 मानद विश्वविद्यालयों की मान्यता समाप्ति कर दी जाए। धीरे-धीरे सब सामान्य हो गया। यह 44-44 मानद विश्वविद्यालय बड़े इत्मीनान से अपना कार्य कर रहे हैं। यह भी किसी को याद करने की आवश्यकता नहीं है कि इनमें से किसी में कोई कमी पाई गई थी। अनेक विश्वविद्यालयों ने अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर जाकर अन्य राज्यों में परिसर स्थापित कर दिए, अनेक ने देश भर में 'फ्रेंचाइजी' घोषित कर दिए और जमकर संसाधन एकत्रित किए।



उत्तर-पूर्व में नए खुले एक मानद विश्वविद्यालय ने पहले दो वर्ष में कई सौ लोगों की 'डॉक्टर' की उपाधि वितरित कर दी। स्पष्ट है कि गुणवत्ता का वर्णापट कितना विस्तृत है और इसका निचला स्तर लगातार भारी होता जा रहा है।

कुछ दिन पहले न्यायालय ने एआईसीटीई द्वारा प्रबंधन संस्थानों को स्वीकृति देने के प्रावधान को निरस्त कर दिया। इसी तरह एम.सी.आई. के अधिकार क्षेत्र से नेशनल एंट्रेन्स एलिजिबिलिटी टेस्ट (नीट) को बाहर कर दिया गया है। जैसे ए.आई.सी.टी.ई. तथा एम.सी.आई. प्रतिष्ठा के शिखर पर कभी नहीं रहे मगर एक बड़ा प्रश्न इन प्रकरणों से अवश्य उभरता है - गुणवत्ता के स्वीकार्य मानकों के स्तर पर विश्वविद्यालयों को लाने में राष्ट्रीय नीतियां तथा उनका क्रियान्वयन करने वाली संस्थाएं सफल क्यों नहीं हो पा रही हैं? उच्च शिक्षा में प्राध्यापकों की, हर प्रकार के संसाधनों की कमी की चर्चा होती रहती है, परिणामस्वरूप उसका अब लगभग सामान्यीकरण हो गया है।

अब निजी विश्वविद्यालय एक नए परिवारवाद को जन्म दे रहे हैं। इनमें सब कुछ परिवार के अंदर, पिता कुलाधिपति और सुपुत्र कुलपति, ही 'मैनेज' करते हैं। जो मॉडल 'दुकानदारी' में या राजनीति में सफल रहा, वह अब शिक्षा में लागू है। राजनेता प्रसन्न होकर इसमें उचित तथा समुचित सहायता कर रहे हैं। जो विश्वविद्यालय या बड़े संस्थान प्रारंभ से ही ईमानदार लक्ष्यों, स्वीकार्य मानवीय मूल्यों को त्याग चुके हों वहां यह अपेक्षा कितनी बेमानी है कि वे अपने छात्रों में मानव मूल्यों का विकास कर सकेंगे या समाज के लिए अपने कार्यों तथा योगदान से सहायक हो सकेंगे? कुल मिलाकर प्रश्न चरित्र निर्माण का है और उसका गुणवत्ता तथा कार्य संस्कृति से सीधा संबंध है। इसमें स्कूल शिक्षा तथा उच्च शिक्षा दोनों की स्तरीयता निहित है।

यदि विश्वविद्यालयीन शिक्षा की गुणवत्ता स्तरीय होती तो स्कूलों में अध्यापन तथा मूल्य विकास भी उसी अनुपात में होता। स्कूल शिक्षा विभाग से लेकर मानव



अब निजी विश्वविद्यालय एक नए परिवारवाद को जन्म दे रहे हैं। इनमें सब कुछ परिवार के अंदर, पिता कुलाधिपति और सुपुत्र कुलपति, ही 'मैनेज' करते हैं। जो मॉडल 'दुकानदारी' में या राजनीति में सफल रहा, वह अब शिक्षा में लागू है। राजनेता प्रसन्न होकर इसमें उचित तथा समुचित सहायता कर रहे हैं।



संसाधन विकास मंत्रालय तक एक उत्तरदायी व्यवस्था होती। तब बिहार के गांव में मिड-डे मील खाकर काल के गाल में धकेल दिये बच्चों पर इतनी अमानवीय, संवेदनहीन तथा अस्वीकार्य प्रतिक्रियाएं न होतीं। कोई तो नैतिक जिम्मेदारी लेता। केंद्र कह रहा है कि यह दुर्घटना अपवाद है, जैसे मिड-डे मील सही चल रहा है। जो देश अपने बच्चों का नैसर्गिक अधिकार उन्हें नहीं दे सकता है उसे सभ्यता तथा मानवीयता की कठिन सीढ़ियां अभी चढ़नी हैं। यदि स्कूल में बच्चों की शिक्षा पर पूरी तरह ध्यान नहीं दिया गया तो उच्च शिक्षा कभी अपेक्षित स्तर की गुणवत्ता प्राप्त नहीं कर सकेगी।

(साभार : राष्ट्रीय संहारा)





**देश भर में महज सात फीसदी स्कूल ही ऐसे हैं,
जिन्होंने पूरी तरह से शिक्षा का अधिकार कानून लागू किया है**

शिक्षा के कानून की अनदेखी

● एल.एस. हरदेनिया

शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अनुसार प्राथमिक स्कूलों में कम से कम 200 दिन पढ़ाई होनी चाहिए और एक शिक्षक को सप्ताह में कम से कम 45 घंटे शिक्षण कार्य करना चाहिए। सर्वेक्षित शालाओं में मात्र 8 प्रतिशत शालाएं ही ऐसी पाई गईं जहां 45 घंटे पढ़ाई होती है। मात्र 10 प्रतिशत स्कूलों में स्थिति कानून के अनुसार पाई गई। सर्वेक्षण के अनुसार 41 प्रतिशत प्राथमिक शालाएं सिर्फ 2 कमरों में लगती हैं।

शिक्षा के अधिकार कानून के क्रियान्वयन के मामले में मध्यप्रदेश सहित देश के कई राज्यों में स्थिति संतोषपूर्ण नहीं है। 2010 में यू.पी.ए. सरकार ने देश के हर बच्चे को शिक्षा के अधिकार का वायदा किया था। सरकार द्वारा कहा गया कि अगले तीन वर्षों यानी 31 मार्च 2013 तक ये वायदे हकीकत का रूप ले लेंगे। पर एक मोटे अनुमान के अनुसार देश भर में महज सात फीसदी स्कूल ही ऐसे हैं, जिन्होंने पूरी तरह से शिक्षा के अधिकार कानून लागू किया है। मध्यप्रदेश में 2010 से 2013 के बीच कानून को लागू करने के लिये क्या कदम उठाए गए इसकी पड़ताल शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले कुछ संगठनों की है। पड़ताल के नतीजों को अभी हाल में आयोजित एक कार्यशाला में पेश किए गए। कार्यशाला का आयोजन भारत ज्ञान-विज्ञान समिति, लोक संघर्ष सांझा मंच आदि संस्थाओं ने मिलकर किया था। इस कार्यशाला में प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों से शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले अनेक लोगों ने भी भाग लिया था।

शिक्षा के अधिकार कानून के क्रियान्वयन के लिए एक आधार संरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) तैयार करना आवश्यक है। यह अधोसंरचना क्या होगी, उनमें क्या तत्व शामिल हैं यह भी कानून में ही तय किया गया है। अनेक संस्थाओं ने वास्तविकता जानने के लिए प्रदेश के सभी जिलों की चुनिंदा शालाओं में पाई जाने वाली परिस्थितियों का सर्वेक्षण किया। इन तत्वों में शामिल हैं, बिना प्रमाण-पत्र, स्थानांतरण प्रमाण-पत्र (टी.सी.), निवास प्रमाण-पत्र आदि न होने की दशा में प्रवेश देने से न तो विलंब किया जाएगा और न ही इंकार किया जाएगा। इस संबंध में पाया गया कि 2012 तक 68 प्रतिशत शालाओं में टी.सी. यानी स्थानान्तरण प्रमाण-पत्र के बगैर बच्चों को प्रवेश नहीं दिया गया। वहीं 53 प्रतिशत शालाओं में प्रवेश के समय जन्म प्रमाण-पत्र को अनिवार्य माना गया।

कानून के दूसरे प्रावधान के अनुसार यदि कोई परिवार किसी गांव से पलायन करता है और बच्चे को साथ ले जाता है तो उस परिवार को नए स्थान में शाला



में प्रवेश अनिवार्य रूप से दिया जाएगा। सर्वेक्षण में पाया गया कि पलायन करने वाले 68 प्रतिशत बच्चों को नए स्थानों की शालाओं में प्रवेश मिला है। बाकी 32 प्रतिशत बच्चे प्रवेश नहीं पा सके जबकि इसका प्रतिशत सौ होना था।

कानून की धारा 17 के अनुसार बच्चों को शाला में शारीरिक दंड नहीं दिया जाना चाहिए। सर्वेक्षित क्षेत्र की 17 प्रतिशत प्राथमिक शालाओं और 25 प्रतिशत माध्यमिक शालाओं में बच्चों को सजा दी जाती है। इस प्रकार कुल मिलाकर 21 प्रतिशत शालाओं में बच्चों को दंड देने की बात सामने आई है। इन शालाओं में पिटाई करना, मुर्गा बनाना, कान पकड़कर खड़ा करना, कंकड़ पर घुटने टिकाकर बैठाने जैसी सजाएं अभी भी प्रचलित हैं।

कानून के क्रियान्वयन में सबसे बड़ी बाधा है शिक्षकों का अभाव। कानून के अनुसार प्राथमिक विद्यालय में विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात 30:1 होना चाहिए। परन्तु 2012 तक 43 प्रतिशत प्राथमिक शालाओं में ही विद्यार्थी शिक्षक अनुपात प्रावधान के अनुरूप पाया गया। सर्वेक्षण के अनुसार 6 प्रतिशत शालाएं एक शिक्षक के हवाले हैं। जहां तक माध्यमिक शालाओं का सवाल है कानून के अनुसार इनमें 35 विद्यार्थियों पर एक शिक्षक होना चाहिए। परन्तु मात्र 37 प्रतिशत शालाओं में विद्यार्थी शिक्षक अनुपात कानून के अनुरूप हैं, जबकि 11 प्रतिशत माध्यमिक शालाएं सिर्फ एक ही शिक्षक के भरोसे चल रही हैं। इस संबंध में टिप्पणी करते हुए बताया गया कि 2012 के बाद स्थिति ज्यादा गंभीर हुई है। शिक्षकों की कमी से अभी भी शालाएं जूझ रही हैं और इस वर्ष उसमें 5 प्रतिशत की और बढ़ोत्तरी हुई है। वहीं एक शिक्षकीय शालाएं भी 7 से बढ़कर 11 प्रतिशत हो गई हैं।

कानून के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों में पूरे सत्र में कम से कम 200 दिन और माध्यमिक शालाओं में 220 दिन पढ़ाई होनी चाहिए और एक शिक्षक को सप्ताह में कम से कम 45 घंटे शिक्षण कार्य करना चाहिए। सर्वेक्षित

शालाओं में मात्र 8 प्रतिशत शालाएं ही ऐसी पायी गईं जहां 45 घंटे पढ़ाई होती है। वर्ष 2011 के अंत तक यह प्रतिशत बढ़कर 11 हो गया है। अधिनियम के अनुसार शाला में एक शिक्षक के लिए कम से कम एक कक्ष होना चाहिए, इसी तरह प्रधान अध्यापक के लिए भी एक पृथक कक्ष होना चाहिए। इस संबंध में भी स्थिति भारी असंतोषपूर्ण है। 10 प्रतिशत स्कूलों में स्थिति कानून के प्रावधान के अनुसार पाई गई। सर्वेक्षण के अनुसार 41 प्रतिशत प्राथमिक शालाएं सिर्फ 2 कमरों में लगती हैं, वहीं 19 प्रतिशत शालाओं में तो पहली से पांचवीं कक्षा तक के बच्चे एक ही कमरे में बैठकर पढ़ते हैं। वहीं 27 प्रतिशत माध्यमिक शालाएं सिर्फ 2 कमरों में लगती हैं। तीन कमरों वाली माध्यमिक शालाओं का प्रतिशत तीन है। 4 प्रतिशत माध्यमिक शालाएं तो सिर्फ 1 कमरे में ही लगती हैं।

कानून के अनुसार लड़के-लड़कियों के लिए अलग-अलग शौचालयों की व्यवस्था होना चाहिए। सर्वेक्षित शालाओं में 76 प्रतिशत शालाओं में शौचालय उपलब्ध हैं। पिछले वर्ष की तुलना में इन 76 प्रतिशत शालाओं में शौचालय उपलब्ध हैं। पिछले वर्ष की तुलना में इन 76 प्रतिशत शालाओं में से आधी शालाओं में एक ही शौचालय है। यानी इन शालाओं में लड़के-लड़कियों के लिए पृथक शौचालय नहीं हैं। पृथक शौचालय नहीं होने से बड़ी होने पर अभिभावक अपनी बच्चियों को शाला भेजना बंद कर देते हैं।

शाला में बच्चों के लिए शुद्ध पानी की व्यवस्था होना चाहिए। सर्वेक्षण के अनुसार 33 प्रतिशत शालाओं में अभी भी पीने के पानी की सुविधा नहीं है। शालाओं की सुरक्षा के लिए स्कूल में चारदीवारी होनी चाहिए। सर्वेक्षण में पाया गया कि 76 प्रतिशत शालाओं में चार दीवारी नहीं है। इससे रात में इन शालाओं का दुरुपयोग असामाजिक तत्व करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र के अतिरिक्त शारीरिक विकास के लिए स्कूल के साथ खेल का मैदान अनिवार्य किया गया है। परन्तु आज भी 17 प्रतिशत शालाओं में खेल के मैदान नहीं हैं।



कानून के अनुसार लड़के-लड़कियों के लिए अलग-अलग शौचालयों की व्यवस्था होना चाहिए। सर्वोक्षित शालाओं में 76 प्रतिशत शालाओं में शौचालय उपलब्ध हैं। पिछले वर्ष की तुलना में इन 76 प्रतिशत शालाओं में शौचालय उपलब्ध हैं। पिछले वर्ष की तुलना में इन 76 प्रतिशत शालाओं में से आधी शालाओं में एक ही शौचालय है। यानी इन शालाओं में लड़के-लड़कियों के लिए पृथक शौचालय नहीं हैं। पृथक शौचालय नहीं होने से बड़ी होने पर अभिभावक अपनी बच्चियों को शाला भेजना बंद कर देते हैं।



कानून के अनुसार प्रत्येक शाला में शाला प्रबंधन समिति का होना अनिवार्य है। इस मामले में पाया गया कि समिति का गठन तो कर लिया जाता है परन्तु 25 प्रतिशत शालाओं में प्रबंधन समिति की बैठक नियमित नहीं होती है। सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि आदिवासी क्षेत्रों में तो स्थिति और भी गंभीर है। एक और संगठन द्वारा सर्वोक्षित 81 गांवों में 6-14 वर्ष की उम्र के कुल 6760 बच्चे हैं जबकि 99 स्कूलों में कुल 4267 बच्चे दर्ज हैं यानी नामांकन केवल 63 प्रतिशत ही हुआ है। जो बच्चे स्कूल की परिधि से दूर हैं उनकी संख्या लगभग 2493 है। इनमें से भी 1698 बच्चे अनुसूचित जनजाति से हैं, अनुसूचित जाति से 122 बच्चे, अति पिछड़ा वर्ग के 470 बच्चे तथा सामान्य वर्ग के 203 बच्चे हैं।

सर्वोक्षित क्षेत्रों में पाया गया कि 99 स्कूलों में से 7 स्कूल ऐसे हैं जो कि कानून के प्रावधानों के अनुरूप

निर्धारित दूरी पर नहीं हैं। इनमें से डिंडौरी के तीन स्कूलों तक पहुंचने के लिए बच्चों को नदी/नाले पार करने होते हैं।

92 स्कूलों के अपने भवन हैं और उनमें से अच्छी स्थिति में 77 स्कूल हैं, 13 स्कूल कम खराब हालत में हैं और 2 स्कूल बहुत ही खराब हालत में हैं।

7 स्कूलों के पास कोई भवन ही नहीं है इनमें से सबसे ज्यादा 3 स्कूल आदिवासी जिले डिंडौरी में हैं।

9 प्रतिशत स्कूल ऐसे भी हैं जिनमें ब्लैक बोर्ड की व्यवस्था नहीं है। ये स्कूल ऐसे भी हैं जिनमें ब्लैक बोर्ड की व्यवस्था नहीं है। ये स्कूल भी सबसे ज्यादा डिंडौरी में अर्थात् 3 हैं जबकि मंडला, जबलपुर और सतना में 2-2 स्कूल ऐसे हैं।

मात्र 16 प्रतिशत स्कूल में अभी तक फेंसिंग की गई है जो अपने आपमें बहुत ही कम है। सर्वोक्षित स्कूलों में से केवल 79 स्कूलों में ही शौचालय हैं जबकि उनमें से केवल लगभग 50 प्रतिशत स्कूलों में लड़कियों के लिए अलग से शौचालय नहीं बना है। जबकि हम सभी जानते हैं कि लड़कियों के बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने का एक मुख्य कारण शौचालय का नहीं होना भी है। डिंडौरी के लहरादादर प्राथमिक स्कूल में शौचालय की व्यवस्था नहीं होने के कारण बच्चे किचन शेड में ही पेशाब करते हैं।

सर्वेक्षण के नतीजे बताते हैं कि 99 स्कूलों में से लगभग अनेक स्कूलों में आज के समय में भी जाति आधारित भेदभाव हो रहा है। सतना के पुराना खेर प्राथमिक स्कूल में पढ़ने वाले छात्र एवं छात्राओं ने बताया कि रसोई बनाने वाली चंपाबाई सेन हमें दूर से ही खाना परोसती है तथा खिला देने के बाद वो अपने घर बिना स्नान किए नहीं जाती है। इस कार्यशाला के दौरान जो वास्तविकताएं उभर कर आई हैं, वे चौंकाने वाली हैं। कुल मिलाकर शिक्षा के अधिकार कानून का शत-प्रतिशत अमल होने में अभी भी बहुत बाधाएं हैं।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं। साभार : पीपुल्स समाचार)





नौकरशाही में व्यापक सुधार की जरूरत

● गौरव कुमार

● आज यह एक गंभीर प्रश्न है कि देश को ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ और कुशल प्रशासन कैसे मिलें। आज कई अधिकारी भ्रष्टाचार में लिप्त हैं तो कई जनहित में प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं। सिविल सेवकों को न केवल देश के अंदर बल्कि देश के बाहर के संबंध में भी अपनी कुशल भूमिका निभानी होती है। लेकिन हम पुरानी चयन प्रणाली के भरोसे वैसा नौकरशाही समूह विकसित नहीं कर पा रहे हैं। आज देश में काफी बदलाव हो चुके हैं। देश में अब वैसी शासन व्यवस्था कायम नहीं रह सकती है जिसे लालफीताशाही कहते हैं। ●

पि | छले दिनों भ्रष्टाचार निरोधक कानून को और सशक्त, बनाने के लिए संशोधनों सहित एक प्रस्ताव को केंद्रीय मंत्रिमंडल ने मंजूरी दी है। इस संशोधित कानून में कई कड़े प्रावधान शामिल किए गए हैं। इसके दायरे में सेवारत तथा रिटायर, दोनों तरह के नौकरशाह को लाया जा रहा है। जांच एजेंसी को भ्रष्ट नौकरशाह की संपत्ति जब्त करने का अधिकार भी दिया गया है। इन संशोधनों में पहली बार भ्रष्टाचार के विभिन्न प्रकारों को परिभाषित किया गया है। किंतु इस कानून के लागू होने के बाद भी भ्रष्टाचार पर कितना अंकुश लग पाएगा, कहना कठिन है।

तीन साल पहले सरकार द्वारा कराए गए सर्वे में यह बात सामने आई कि भारत के प्रत्येक तीन सिविल सेवक में से एक का यह मानना था कि देश में साफ-सुथरी और पारदर्शी व्यवस्था नहीं है। इस बीच पिछले दिनों हांगकांग के 'पॉलिटिकल एंड इकोनॉमिक्स रिस्क कंसल्टेंसी' ने अपनी एक अध्ययन रिपोर्ट में भारतीय नौकरशाही को एशिया में सबसे निम्न स्तर का बताया है। सबसे खराब स्थिति में 10 अंक दिए जाने वाले एक फॉर्मूले पर आधारित इस रिपोर्ट में भारत का स्कोर 9.21 है। इसके विपरीत सबसे बेहतर स्थिति में सिंगापुर है जिसे 2.25 का स्कोर मिला है। चीन का स्कोर भी भारत से बेहतर 7.11 है। भारत सरकार द्वारा 2010 में कराए गए एक अन्य सर्वे रिपोर्ट में भी भारतीय नौकरशाही की स्थिति कुछ इसी प्रकार की थी। इस सर्वे में

शामिल 52.4 प्रतिशत सिविल सेवकों का मानना था कि पदस्थापना और स्थानांतरण मेरिट के आधार पर होता है। नौकरशाही में बाह्य दबाव को करीब 51.7 प्रतिशत सिविल सेवकों ने स्वीकारा, जबकि 34.9 प्रतिशत सिविल सेवकों का कहना था कि व्यवस्था पारदर्शी नहीं है।

आज हमारी नौकरशाही जनविमुख और भ्रष्ट होती जा रही है। ऐसा कई कारणों से है। सबसे अहम कारण है नौकरशाही का राजनीतिक रुझान और नौकरशाहों पर राजनीतिक दबाव। नौकरशाही में भ्रष्टाचार एक सच्चाई है। इसके अलावा हमारी नौकरशाही संरचना भी लगातार विकृत होती जा रही है। कहीं न कहीं नौकरशाहों की चयन प्रक्रिया में दोष है यही वजह है कि विभिन्न प्रशासनिक सुधार आयोगों द्वारा समय-समय पर चयन प्रक्रिया में सुधार लाने हेतु सिफारिश की जाती रही है। इसका एकमात्र मकसद है कि बदलती घरेलू और वैश्विक संरचना में भारतीय प्रशासकों की भूमिका भी बदल रही है जिसके अनुकूल चयन प्रणाली होनी चाहिए।

आज यह एक गंभीर प्रश्न है कि देश को ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ और कुशल प्रशासन कैसे मिलें। आज कई अधिकारी भ्रष्टाचार में लिप्त हैं तो कई जनहित में प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं। सिविल सेवकों को न केवल देश के अंदर बल्कि देश के बाहर के संबंध में भी अपनी कुशल भूमिका निभानी होती है। लेकिन हम पुरानी चयन प्रणाली



के भरोसे वैसा नौकरशाही समूह विकसित नहीं कर पा रहे हैं। आज देश में काफी बदलाव हो चुके हैं। देश में अब वैसी शासन व्यवस्था कायम नहीं रह सकती है जिसे लालफीताशाही कहते हैं। इसके लिए हमें जनकेंद्रित और कुशल सामाजिक प्रशासकों की जरूरत है। बदलती जरूरतों के अनुकूल हमारे हर साधन और साध्य बदलें, तभी हम टिकाऊ और समावेशी विकास की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

दूसरी ओर देखें तो देश की इस प्रशासनिक फौज में शामिल होने से बहुत-सी प्रतिभाएं वंचित भी रह जाती हैं। इसका कारण है प्रतिभा पलायन। देश में प्रतिभा पलायन पर बीते काफी समय से बहस जारी है। इस पलायन को रोकने के लिए अब तक कोई भी कारगर उपाय नहीं किये जा सके हैं। भारत बेहतर प्रतिभाओं को इन सेवाओं के प्रति आकर्षित नहीं कर पाता। काबिल लोगों को यहां बेहतर और प्रतिस्पर्धी सुविधा नहीं मिल पाती है, साथ ही इन्हें अपेक्षाकृत कम पारिश्रमिक मिलता है। तमाम प्रतिभाएं, अपने कार्यक्षेत्र में अनावश्यक सरकारी हस्तक्षेप के कारण भी सिविल सेवाओं से दूर हो जाती हैं। विदेशों में ऐसी प्रतिभाओं को तमाम सहूलियतें दी जाती हैं। हम किसी प्रतिभावान से केवल देश प्रेम के कारण यहां रुकने की अपेक्षा नहीं कर सकते। हमें उनकी जरूरत और काबिलियत के मुताबिक प्रोत्साहन व पुरस्कार देना ही होगा।

प्रशासनिक सेवाओं के अलावा देश के कई अन्य महत्वपूर्ण सरकारी संस्थान में सेवारत लोग भी पलायन कर रहे हैं। संसद के पिछले शीतकालीन सत्र में ही रक्षा मंत्री ए.के. एंटोनी ने राज्यसभा में बताया था कि रक्षा अनुसंधान विकास संगठन (डी.आर.डी.ओ.) से पिछले छह वर्षों में करीब 700 वैज्ञानिक इस्तीफा दे चुके हैं। अकेले वर्ष 2012 में 50 से अधिक वैज्ञानिकों ने इस्तीफा दे दिया है। इसका कारण दूसरे संस्थानों में उन्हें बेहतर मौके मिलना है।

हमें आज उन कारणों और पद्धतियों की खोज करने की जरूरत है जिससे पश्चिमी देश निरंतर प्रत्येक क्षेत्र में

विकास करते जा रहे हैं। इसके विपरीत आज देश में जो भी नीतियां अपनाई जाती हैं, उन्हें बनाने में बुनियादी समझ का अभाव दिखता है। ऐसे में हम नौकरशाहों से इन नीतियों के साथ बेहतर परिणामों की उम्मीद कैसे कर सकते हैं। स्वतंत्रता के बाद से आज तक कोई ऐसी सरकार नहीं बनी है जिसने सामाजिक नीति पर गंभीरता दिखाई हो। देश में अब तक जितनी भी नीतियां, योजना, कार्यक्रम बने, इनमें आज तक एक वृहत सामाजिक नीति के लिए किसी समाजशास्त्री को शामिल नहीं किया गया, जो समाज को अन्य लोगों की अपेक्षा बेहतर समझते हैं। आज पूरी व्यवस्था मार्केट इकोनॉमी की तरफ झुकी है। किसी भी समाज को सिर्फ आर्थिक नजरिये से नहीं देखा और समझा जा सकता है। एक बहुविविध सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व मूल्यों वाले राष्ट्र के लिए हमारी प्रशासनिक व्यवस्था का विस्तार केवल आर्थिक आयामों तक सीमित नहीं होना चाहिए।

आज हमारे नौकरशाहों के सामने बदलती वैश्विक व्यवस्था में एक सफल कूटनीति के साथ संबंधों को विस्तार देने की चुनौती है। किसी भी देश के बहुपक्षीय और द्विपक्षीय संबंधों की निर्धारक है कूटनीतिक क्षमता। वैश्विक आर्थिक महाशक्ति और वैश्विक नेतृत्व की भूमिका में बढ़ते भारत के लिए यह और भी महत्वपूर्ण हो गया है। पिछले दिनों में हमने देखा है कि कारगर व मजबूत विदेश नीति तथा कूटनीतिक कौशल के अभाव में भारत को प्रायः हर मामले में कमजोर किया है। इसका हाल का उदाहरण मालदीव, श्रीलंका, पाकिस्तान, चीन और इटली के साथ विवादों में दिखा है। भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में गिरावट का ही नतीजा है कि देश में तमाम कल्याणकारी योजनाओं को बावजूद गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, अशिक्षा और अपराध को खत्म नहीं किया जा सका है। आज देश को अप्रत्यक्ष रूप से चला रहे सिविल सेवकों की चयन प्रक्रिया, प्रशिक्षण और नियोजन की संरचना में मूलभूत सुधार की तत्काल आवश्यकता है।

(साभार : राष्ट्रीय संहारा)





कैसे सुधार हो मिड डे मील में!

● भारत डोगरा

- मिड डे मील खाकर बच्चों के बीमार होने की अधिकता का एक कारण तो यह है कि खाना पकाने की व्यवस्था ठीक से नहीं हो पाती है। एक अन्य कारण है कि घटिया गुणवत्ता की कच्ची खाद्य सामग्री सप्लाई की जाती है। इसका एक बड़ा कारण भ्रष्टाचार है। प्रति बच्चे के लिए दिया जाने वाला बजट भी बहुत कम है।
- देश के अधिकांश स्कूलों की क्या स्थिति हैं, क्या सीमाएं हैं, क्या कार्यक्रम व्यावहारिक है, यह सब ध्यान में रखते हुए व स्थानीय लोगों विशेषकर महिलाओं का भरपूर सहयोग लेते हुए ही मिड डे मील को सुधारा जा सकता है।

बि | हार में मिड डे मील से हुई बच्चों की मौत से पूरा देश आहत हुआ है। लोग पूछ रहे हैं कि यह कैसा कुपोषण दूर करने का कार्यक्रम है जो बच्चों की जान ले रहा है। बिहार की दर्दनाक त्रासदी की निष्पक्ष जांच के साथ दोषियों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई तो होनी ही चाहिए, साथ ही यह भी जरूरी है कि पूरे देश के स्तर पर मिड डे मील योजना में जरूरी सुधार किए जाए।

बहुदलीय लोकतंत्र में यह स्वाभाविक है कि कोई त्रासदी होने पर विभिन्न राजनीतिक दलों में आरोप-प्रत्यारोप बहुत होते हैं। विशेषकर जब कुछ नेताओं व दलों के बीच विवाद बहुत तीखे हो चुके होते हैं, तब कोई त्रासदी घटित हो तो आरोप और भी जोर पकड़ लेते हैं। पर इन आरोपों के बीच हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा मूल उद्देश्य तो ऐसी त्रासदी से सबक सीख कर कार्यक्रम या स्कीम में सुधार करना है। विशेषकर मिड डे मील स्कीम में तो सुधार की आवश्यकता बहुत समय से महसूस की जा रही है क्योंकि समय-समय पर देश के विभिन्न क्षेत्रों से इस स्कीम से जुड़ी दुर्घटनाओं व बच्चों के बीमार पड़ने के समाचार मिलते रहे हैं। इस संदर्भ में दिल दहला देने वाला हादसा तमिलनाडु में हुआ था। उसके कारण जो गहरा दुख-दर्द

उत्पन्न हुआ उसे हम कभी भूल नहीं सकते हैं।

वर्ष 2004 की तमिलनाडु में कुंबकोनम त्रासदी के घाव आज भी नहीं भरे हैं। इस दर्दनाक वारदात में कुंबकोनम स्थित स्कूल में 16 जुलाई 2004 को 94 बच्चों की जलने से मौत हो गई थी और 18 बच्चे गंभीर रूप से घायल हुए थे। सभी बच्चे 7 से 11 वर्ष की आयु वर्ग के थे। जांच आयोग ने जो रिपोर्ट दी उसके अनुसार यह त्रासदी मिड डे मील बनाने वाले स्टाफ की लापरवाही और स्कूल प्रबंधन द्वारा सुरक्षा के उचित मानदंड न अपनाने के कारण हुई।

मिड डे मील स्कूल के परिसर में या उसके बहुत पास बनता है तो प्रतिदिन बड़े पैमाने पर भोजन पकाने का आयोजन स्कूल में या उसके आसपास करना पड़ता है। जरूरी बात है कि इसके लिए ईंधन जैसे गैस, केरोसिन, लकड़ी आदि का स्टोरेज भी होगा। अब आगे सवाल यह है कि ऐसे में लाखों स्कूलों की सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत करने की जो अतिरिक्त जिम्मेदारी उत्पन्न हो गई है, उसे पूरा कैसे किया जाए।

पर मुद्दा केवल किसी संभावित अग्निकांड से बचने का नहीं है। इस तरह के समाचार तो निरंतर मिलते ही



मिड डे मील योजना को बेहतर बनाने के लिए इसके अंतर्गत ऐसे सूखे खाद्य दिए जाने चाहिए जो लगभग सात-आठ दिन तक खाने की हालत में रखे जा सकें। पौष्टिकता को ध्यान में रखते हुए स्थानीय अनाज, दलहन व तिलहन का उपयोग कर कई तरह के बिस्कुट, गजक, लड्डू आदि इस स्कीम में वितरण के लिए बनाए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त ताजे फलों व सलाद का वितरण भी बच्चों में हो सकता है। सूखे खाद्य तैयार करने का कार्य महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को मिलना चाहिए। इसके लिए उन्हें स्कूल के पास एक अच्छा किसन व भंडारण गृह मिलना चाहिए। महिलाएं यहां मिड डे मील के लिए खाद्य तैयार करने के साथ आंगनवाड़ी आदि के लिए भी खाद्य तैयार कर सकती हैं।

रहते हैं कि आज इस स्कूल में बच्चे मिड डे मील खाकर बीमार हो गए तो कल उस स्कूल में। कई बाद बड़ी संख्या में बच्चे एक साथ बीमार हो जाते हैं। ऐसे छोटी-मोटी घटनाएं विशेषकर दूरदराज के गांवों में हों तो वे प्रकाश में आती ही नहीं हैं। मिड डे मील खाकर बच्चों के बीमार होने की अधिकता का एक कारण तो यह है कि खाना पकाने की व्यवस्था ठीक से नहीं हो पाती है। एक अन्य कारण है कि घटिया गुणवत्ता की कच्ची खाद्य सामग्री सप्लाय की जाती है। इसका एक बड़ा कारण भ्रष्टाचार है। प्रति बच्चे के लिए दिया जाने वाला बजट बहुत कम है।

हाल ही में स्कूली बच्चों के लिए मिड डे मील योजना पर एक लंबा बहस शुरू हुई तो मूलतः एक मिथ्या बहस थी। बहस में एक पक्ष ने कहा कि इस योजना के तहत सब स्कूली बच्चों को रोज ताजा पका हुआ भोजन

देना चाहिए - जैसे दाल-चालव, सब्जी रोटी आदि। दूसरे पक्ष ने कहा कि बाजार में उपलब्ध विभिन्न कंपनियों के सूखे खाद्य पदार्थ जैसे बिस्कुट आदि देने चाहिए क्योंकि रोज भोजन पकाना बहुत कठिन है। यह दोनों ही विचार उचित नहीं हैं।

प्रतिदिन स्कूल में बड़ी संख्या में बच्चों के लिए दाल-रोटी-सब्जी जैसा ताजा भोजन पकाना बहुत कठिन कार्य है। इसके कारण शिक्षा पर प्रतिकूल असर पड़ता है। बड़ी मात्रा में भोजन प्रतिदिन पकाने की स्थितियां ऐसी हैं कि निरंतर दूषित भोजन खाने के कारण बच्चों के बीमार होने के समाचार मिल रहे हैं व गंभीर अग्निकांड के समाचार भी मिले हैं। दूसरी ओर बड़ी कंपनियों के बिस्कुट जैसे उत्पादों का बच्चों में वितरण इस कारण उचित नहीं है कि केंद्रीकृत उत्पादन के इनके स्थानों से दूर-दूर के गांवों में प्रतिदिन सुरक्षित भोजन पहुंचाना सरल नहीं है। अपने उत्पादों को देर तक रखने योग्य बनाने के लिए प्रायः कंपनियां ऐसे प्रिजरवेटिव का उपयोग करती हैं जो उचित नहीं हैं। इनके बिस्कुट व अन्य उत्पाद प्रायः मैदे के बने होते हैं। इनमें पोषण के स्थान पर स्वाद पर अधिक ध्यान दिया जाता है। साथ ही इनके उत्पादन में अति मशीनीकृत तरीकों का उपयोग होता है जिनमें बहुत कम रोजगार का सृजन होता है।

मिड डे मील योजना को बेहतर बनाने के लिए इसके अंतर्गत ऐसे सूखे खाद्य दिए जाने चाहिए जो लगभग सात-आठ दिन तक खाने की हालत में रखे जा सकें। पौष्टिकता को ध्यान में रखते हुए स्थानीय अनाज, दलहन व तिलहन का उपयोग कर कई तरह के बिस्कुट, गजक, लड्डू आदि इस स्कीम में वितरण के लिए बनाए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त ताजे फलों व सलाद का वितरण भी बच्चों में हो सकता है। सूखे खाद्य तैयार करने का कार्य महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को मिलना चाहिए। इसके लिए उन्हें स्कूल के पास एक अच्छा किसन व भंडारण गृह मिलना चाहिए। महिलाएं यहां मिड डे मील के लिए खाद्य तैयार



करने के साथ आंगनवाड़ी आदि के लिए भी खाद्य तैयार कर सकती हैं। स्वयं सहायता समूह प्रतिदिन स्कूल में उपस्थित बच्चों की संख्या के आधार पर स्कूल को सूखे खाद्य देगा व इसकी रसीद प्राप्त करेगा जिसके आधार पर उसे भुगतान सरकार करेगी। यथासंभव यह खाद्य बच्चों को हाजिरी के समय ही दे दिए जाएंगे ताकि सुबह कुछ खा कर न आए बच्चों को तुरंत कुछ पोषण मिल जाए। दूसरी बार आधी छुट्टी के समय में भी यह सूखे खाद्य देना व इसकी रसीद प्राप्त करेगा जिसके आधार पर उसे भुगतान सरकार करेगी। यथासंभव यह खाद्य बच्चों को हाजिरी के समय ही दे दिए जाएंगे ताकि सुबह कुछ खा कर न आए बच्चों को तुरंत कुछ पोषण मिल जाए। दूसरी बार आधी छुट्टी के समय में भी यह सूखे खाद्य दिए जाएंगे। स्कूल के पास खुला स्थान हो तो यह स्कूल को फल व सब्जी के उत्पादन के लिए दिया जा सकता है। यहां जिन ताजे फलों व सलाद की सब्जियों का उत्पादन हो, वह बच्चों को मिड डे मील स्कीम के अंतर्गत दिए जाएं।

महिलाओं को सफाई से अच्छी गुणवत्ता का आहार तैयार करने का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। वैसे जब स्थानीय महिलाएं अपने बच्चों के लिए ही आहार बना रहीं हैं तो यह मातृत्व की भावना से बनेगा और गुणवत्ता अच्छी ही रहेगी। जहां तक संभव हो स्थानीय किसानों से अनाज व अन्य कच्चा माल खरीदकर सरकार इस स्वयं सहायता समूह को दे। इससे कच्चे माल की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में सहायता मिलेगी। स्थानीय स्तर पर जो अच्छी गुणवत्ता के अनाज, दलहन, तिलहन, गुड, सब्जी व फल मिलें, तेल व मसाले मिले उनका उपयोग मिड डे मील बनाने में करना चाहिए। स्थानीय मोटे अनाज जैसे बाजरा, रागी, मंडुवा में पौष्टिक तत्व अधिक होते हैं तथा वे सस्ते भी होते हैं, अतः उन पर अधिक ध्यान देना चाहिए। छिलका उतरी दालों के स्थान पर छिलका युक्त दालों का उपयोग बेहतर है। तेल की शुद्धता भी सुनिश्चित करना आवश्यक है।

महिलाओं को सफाई से अच्छी गुणवत्ता का आहार तैयार करने का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। वैसे जब स्थानीय महिलाएं अपने बच्चों के लिए ही आहार बना रहीं हैं तो यह मातृत्व की भावना से बनेगा और गुणवत्ता अच्छी ही रहेगी। जहां तक संभव हो स्थानीय किसानों से अनाज व अन्य कच्चा माल खरीदकर सरकार इस स्वयं सहायता समूह को दे। इससे कच्चे माल की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में सहायता मिलेगी। स्थानीय स्तर पर जो अच्छी गुणवत्ता के अनाज, दलहन, तिलहन, गुड, सब्जी व फल मिलें, तेल व मसाले मिले उनका उपयोग मिड डे मील बनाने में करना चाहिए।

वे ताजे फल खरीदने चाहिए जो छीले-काटे बिना एक बच्चे को एक या दो पीस के आधार पर बराबरी से बांटे जा सकें व सफाई से खाए जा सकें - जैसे केला, संतरा आदि। मूली, गाजर, ककड़ी, टमाटर जैसी जो ताजी सब्जियां आसानी से बांटी जा सकें व सलाद रूप में खाई जा सकें, उन्हें महत्व देना चाहिए। सलाद को अच्छी तरह धोना चाहिए। इसके अलावा प्रति बच्चे के पोषण पर होने वाले खर्च का बजट बढ़ना चाहिए ताकि वास्तव में पौष्टिक मिड डे मील दिया जा सके। मिड डे मील स्कीम में सुधार करते समय हमें स्कूलों की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखना है, क्या सीमाएं हैं, क्या कार्यक्रम व्यावहारिक है, यह सब ध्यान में रखते हुए व स्थानीय लोगों विशेषकर महिलाओं का भरपूर सहयोग लेते हुए ही मिड डे मील को सुधारा जा सकता है।

(साभार : राष्ट्रीय सहारा)





गांवों में डॉक्टरों की समस्या

● रामप्रताप गुप्ता

बीएससी (सामुदायिक स्वास्थ्य) पाठ्यक्रम में प्रशिक्षित डॉक्टरों को सामाजिक लक्ष्यों से भी अवगत करना होगा ताकि वे निम्नस्तरीय भुगतान शक्तिवाले और साथ ही चिकित्सा सुविधाओं से वंचित ग्रामीण क्षेत्रों को सहर्ष चिकित्सा सुविधाएं प्रदान कर सकें। 76 प्रतिशत पद एमबीबीएस डॉक्टरों के वर्ष 2011 की स्वास्थ्य सांख्यिकी के अनुसार रिक्त थे।

सरकार ने कुछ वर्ष ग्रामीण क्षेत्रों को भी स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन कार्यक्रम शुरू किया था ताकि ग्रामीणों को हर छोटी-बड़ी स्वास्थ्य समस्याओं के लिए शहर न भागना पड़े और स्वास्थ्य मापदंडों पर ग्रामीण क्षेत्र और शहरी क्षेत्र के मध्य की खाई को पाटा जा सके। इस लक्ष्य की पूर्ति के मार्ग में हमारे एमबीबीएस डॉक्टरों की ग्रामीण क्षेत्रों में नियुक्ति, पदांकन के प्रति परहेज एक बड़ी बाधा सिद्ध हुआ है। इसका परिणाम यह भी हुआ है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रह रही देश की बहुसंख्यक जनता समुचित स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित हो रही है।

हमारे एमबीबीएस डॉक्टरों की ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने के प्रति अनिच्छा का परिणाम इन आंकड़ों से और भी स्पष्ट हो जाता है। वर्ष 2011 की स्वास्थ्य सांख्यिकी के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में एमबीबीएस डॉक्टरों के 76 प्रतिशत, विशेषज्ञ डॉक्टरों के 88 प्रतिशत, रेडियोग्राफरों के 85 प्रतिशत, प्रयोगशाला तकनीशियनों के 80 प्रतिशत और नर्सों के 53 प्रतिशत पद रिक्त थे। यह फिर अब भी जबकि ग्रामीण स्वास्थ्य उपकेंद्रों की संख्या भी मापदण्डों के अनुरूप नहीं है, उससे कम है। फिर एक चौथाई उपकेंद्रों में तो पेयजल की व्यवस्था नहीं है। फिर वर्तमान में जिन डॉक्टरों का ग्रामीण क्षेत्रों में पदांकन हो भी जाता है, उनमें से आधे अपने कर्तव्य स्थल से अनुपस्थित पाए जाते हैं। परिणाम

यह हो रहा है अनेक ग्रामीण स्वास्थ्य उपकेंद्र एएनएम के भरोसे ही चल रहे हैं। ये सब तथ्य इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि ऐसे में ग्रामीणों को अपनी स्वास्थ्य समस्याओं के लिए झोलाछाप डॉक्टरों की शरण में जाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। किसी गंभीर स्वास्थ्य समस्या को लेकर शहर जाने वाले मरीज वहां के निजी डॉक्टरों की लूट का शिकार होने के लिए विवश हो जाते हैं।

सरकार लंबे समय से प्रयास करती रही है कि किसी न किसी तरीके से हजारों एमबीबीएस डॉक्टरों को ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर सेवाएं प्रदान करने के लिए प्रेरित किया जावे, बाध्य किया जावे। वर्ष 2007 में सरकार ने डॉक्टरों को एमबीबीएस की डिग्री देने के पूर्व उनके लिए एक वर्ष की ग्रामीण क्षेत्रों में सेवा अनिवार्य की थी। एक सर्वेक्षण के अनुसार डॉक्टर येन-केन प्रकारण ड्यूटी पर उपस्थित होने का प्रमाण पत्र हासिल कर लेते हैं। उनमें से आधे अनुपस्थित पाए गए थे और जो जाते हैं, वे वहां मुश्किल से घंटा-आधा घंटा ही बैठते हैं। उनकी सेवाओं की अनिश्चितता की पृष्ठभूमि में ग्रामीण कम्पाउंडर्स, नर्सों, एएनएम से ही चिकित्सा लेने को बाध्य हो जाते हैं। फिर डॉक्टरों के संघ ने डिग्री के पूर्व एक वर्ष की ग्रामीण सेवा इस प्रावधान का पुरजोर विरोध किया और अंततः सरकार को इस प्रावधान को हटाना पड़ा। इन डॉक्टरों के लिए विशेष वेतन की व्यवस्था भी की गई परन्तु यह भी व्यर्थ ही रहा।



गांवों में डॉक्टरों की सेवाएं उपलब्ध कराने में असफल रही सरकार को दिल्ली उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि वह ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए एक नए व उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्माण करें। इस आदेश की पृष्ठभूमि में स्वास्थ्य और परिवार नियोजन मंत्री गुलाम नबी आजाद ने मार्च 2013 में राज्यसभा को बताया कि सरकार ने बीएससी (सामुदायिक स्वास्थ्य) का पाठ्यक्रम तैयार किया है। इसे पास करने वालों को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में पदस्थ किया जाना था और मध्य स्तर की स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करनी थी। परन्तु भारतीय चिकित्सक संघ व संसदीय उपसमिति ने इसका विरोध किया। पाठ्यक्रम का विरोध समझ से परे है। इन सबके बावजूद असम व छत्तीसगढ़ की सरकारें ग्रामीण चिकित्सा सहायक (रूरल मेडिकल असिस्टेंट) पाठ्यक्रम संचालित कर रही हैं और इसके प्रशिक्षित चिकित्सक गांवों में सफल चिकित्सा सेवाएं

दे रहे हैं।

सरकार को ग्रामीण चिकित्सा की आवश्यकताओं के अनुरूप चिकित्सकों की पूर्ति की दिशा में प्रयास तो करना ही होगा, साथ ही तेजी से बढ़ते निजी स्वास्थ्य क्षेत्र के विस्तार पर भी रोक लगानी होगी। वर्तमान में इनके द्वारा वसूली जाने वाली राशि के लिए कोई मापदंड नहीं होने से मरीज लूट का शिकार हो रही हैं। अतः हमें बीएससी (सामुदायिक स्वास्थ्य) के पाठ्यक्रम में प्रशिक्षित चिकित्सकों को सामाजिक लक्ष्यों से भी अवगत करना होगा ताकि वे निम्नस्तरीय भुगतान शक्ति वाले और साथ ही चिकित्सा सुविधाओं से वंचित ग्रामीण क्षेत्रों को सहर्ष चिकित्सा सुविधाएं प्रदान कर सकें।

लेखक पूर्व प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) हैं।

साभार : पत्रिका



“The best moments in reading are when you come across something - a thought, a feeling, a way of looking at things - which you had thought special and particular to you. And now, here it is, set down by someone else, a person you have never met, someone even who is long dead. And it is as if a hand has come out, and taken yours”

- Alan Bennet





शहरी मलिन बास्तियों में पचास प्रतिशत से अधिक बुजुर्ग जीवनयापन के लिए दो हजार रु. महीना कमाते हैं

बुजुर्गियत का बोझ कैसे ढोएं

• डॉ. रमेश प्रसाद द्विवेदी

वृद्ध लोग समाज के लिए उपयोगी हैं लेकिन उनके अनुभवों का उपयोग समाज अच्छी तरह नहीं कर रहा है। अधिकांश वृद्धों ने अपनी समस्याओं के निराकरण के लिए सुझाव दिया कि बच्चों को समाज के लोगों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे वृद्धों का आदर करना सीखें। दूसरा मुख्य सुझाव आर्थिक सहायता का है। आर्थिक समस्या इस अवस्था में प्रमुखता से उभर कर सामने आई है। इस कारण वृद्ध लगातार समस्याओं से घिरते चले जाते हैं।

इतिहास इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि प्राचीन काल में वृद्धों की स्थिति अत्यंत उन्नत एवं सम्मानीय रही है। उन्हें समाज हाथों-हाथ लिया करती थी। परिवार को कोई फैसला उनकी सलाह, अनुभव और चर्चा के आधार पर होता था, उन्हीं की सत्ता एवं प्रभाव के कारण पहले संयुक्त परिवार हुआ करते थे, वे परिवार के सदस्यों को एक धागे में बांधे रखते थे, परंतु बदलते युग में वृद्धों की समस्याओं का बढ़ना एवं समाज में उनकी उपयोगिता कम और समस्याएं बढ़ती नजर आ रही है। बुढ़ापा जीवन का अंतिम पड़ाव है और इस पड़ाव में जीवन असक्त हो जाता है। कार्य करने की क्षमता कमजोर हो जाती है। भरण-पोषण के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। यही निर्भरता वृद्धों की समस्याओं की मूल में है। शारीरिक एवं आर्थिक दृष्टि से घुटन भरी जिन्दगी जीने को विवश हो जाती है। चाहे वह शिक्षित हों या अशिक्षित, इस अवस्था में उनकी स्थिति चरमराने लगती है, वह युवा पीढ़ी से तालमेल खत्म हो जाता है, जिससे संवाद की दिक्कत बढ़ जाती है। विश्व में समाज का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है कि जहां वृद्धावस्था में अब सामाजिक एवं आर्थिक असुरक्षा के कष्ट झेलते हैं। युवा वर्ग वृद्धों को कोई महत्व नहीं देते हैं।

हमारे देश में समस्याओं के बढ़ते अनेक कारण हैं

जो समाज की देन हैं लेकिन जैसे-जैसे औद्योगिक गतिशीलता बढ़ी वैसे-वैसे वृद्धों को उपेक्षा का शिकार होकर होना पड़ा। आज इन वृद्धों की समस्याओं के बहुत से कारण हैं जिनमें प्रमुख हैं -

संयुक्त परिवार का विघटन - औद्योगिक नगरों की ओर रोजगार के लिए तेजी प्रस्थान करती हुई युवा पीढ़ी को अपने बुजुर्गों के प्रति उदासीनता ने समाज में गंभीर समस्या उत्पन्न कर दी है। यह वही देश है कि जहां की संस्कृति में परिवार के बुजुर्गों को भगवान के समान माना जाता था। लेकिन क्या आज के हर क्षण के बदलते परिवेश में इस प्रकार की अपेक्षा की जा सकती है। आज की नई युवा पीढ़ी न तो बड़ों के अनुशासन में रहना चाहती और न ही आदर सम्मान करना चाहती है। इसके पीछे व्यवसाय और रोजगार की प्रमुख समस्याएं हैं।

भौतिक सुख सुविधाओं की वृद्धि- भौतिक सुख सुविधाओं की वृद्धि होने के कारण औद्योगीकरण व संस्कृतिकरण के फलस्वरूप आज की युवा पीढ़ी का रहन-सहन एवं जीवन शैली में बदलाव तेजी से देखा जा रहा है। इस युग में व्यक्ति अपने कार्यों में इतना व्यस्त हो गया है कि उन्हें अपने परिवार के सदस्यों के साथ बैठना अब आवश्यक नहीं समझते हैं, जिसकी सबसे बड़ी पीड़ा बुजुर्गों को ही



झेलनी पड़ती है। परिवार की अवधारणा केवल पति-पत्नी एवं बच्चों तक ही सीमित होने लगा है और वृद्ध समाज एवं परिवार के क्षेत्र या सीमा से बाहर होते जा रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी अपनी भौतिक सुख-सुविधाओं को अधिक महत्व देती है और वृद्धों पर कम। व्यक्ति को अपने आराम की हर वस्तु खरीदने के लिए पर्याप्त पैसा होता है लेकिन वृद्धों के बीमारियों के लिए पैसे नहीं।

नई-पुरानी पीढ़ी के बीच फासला- इसके संबंध में कुछ फासला हमेशा से रहा है जिसको पीढ़ी का अंतराल कहा जाता है। अगर विचार किया जाए तो यह पीढ़ियों के आचार-विचार, जीवन शैली, सोच का अंतर ही है। हालांकि नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी विरासत में न केवल जीवन शैली वरन जीवन दर्शन भी पाती है। अपने लिए सारे परिवर्तन या संशोधन भी उसी में से करती है। फिर भी न जाने क्यों पुरानी पीढ़ी उसे बोझ सी लगती है।

धन का महत्व- आज के युग में धन का महत्व बढ़ने के कारण वह धन कमाने में वे इतना व्यस्त हैं कि उन्हें दूसरों को ध्यान देने का समय नहीं है। बच्चे बड़े होकर माता-पिता को तभी अपनाते हैं जब तक उसके पास धन होता है। धन समाप्त होने के बाद उनके वृद्धों का कोई महत्व नहीं बचता है और वे बोझ बन कर रह जाते हैं।

व्यक्तिगत स्वार्थ - आज के युग में व्यक्ति स्वयं केंद्रित हो गया है जिससे स्वार्थ की भावना बढ़ गई है। नई पीढ़ी अपना स्वार्थ देखकर ही कार्य करती है। युवा अपने परिवार के वृद्धों की देखभाल तभी करते हैं जब वह समझते हैं कि उन्हें संपत्ति प्राप्त हो सकती है। उनके अंदर अपने बुजुर्गों के प्रति सेवा, दया एवं त्याग कम होता जा रहा है क्योंकि वह वृद्धों की सेवा व कर्तव्य को अपने कार्य एवं स्वतंत्रता में बाधक मानते हैं। अपने हित के लिए वृद्धों को अनदेखा कर देते हैं।

इसके अलावा वृद्धावस्था के साथ कुछ समस्याएं भी होती हैं। लगभग सभी को अपने जीवन में इन समस्याओं से गुजरना होता है। जीवन का अंतिम पड़ाव समस्या से

घिरी हुई अवस्था माना जाता है, जिसके परिणामस्वरूप दूसरों के साथ संबंध स्थापित करने में असमर्थ रहते हैं। वृद्धों की समस्याओं एवं उनकी उपयोगिता भी समाज में कम होती नजर आने लगी है। वृद्धावस्था में शरीर शिथिल होने लगते हैं। वृद्धावस्था में शरीर में बदलाव का परिणाम सामाजिक बदलाव पर होता है। इस अवस्था में अनेक समस्याएं निर्मित होती हैं। कोई व्यक्ति 60 साल में भी जवान दिखाई देता है तो कोई 40 साल में ही वृद्ध दिखने लगता है। वृद्धावस्था में व्यक्ति के शरीर में झुर्रिया, चिड़चिड़ापन जैसे अनेक लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

शारीरिक बदलाव के अनुसार मानसिक परिवर्तन भी होता है। इस अवस्था के प्रवेश करते ही मानसिक तनाव की स्थिति बनने लगती है तथा लोगों से संपर्क बनाना सहयोगी या मित्रों के निधन हो जाने से मानसिक तनाव एक महत्वपूर्ण कारण है। सर्वविदित है कि यदि पति या पत्नी में किसी एक की मृत्यु हो जाने से हीन भावना की वृद्धि होती है तथा आत्मविश्वास का अभाव दिखने लगता है जिससे मानसिक विकृत, अकेलापन आदि भाव जन्म लेते हैं। अतः समाज में अपना उपयोग नहीं होने से अनुपयोगी होने की भावना का जन्म होने लगता है। इससे वृद्धों में अकेलेपन की समस्या का निर्माण होता है।

किसी भी वृद्ध को समाज व परिवार में मान-सम्मान की अपेक्षा होती है लेकिन आज वृद्धों का अनादर देखने को मिलने लगा है, जिससे उन्हें घर में अपेक्षानुसार मान-सम्मान की जगह अनादर मिलने लगा है। वृद्धावस्था एक ऐसी अवस्था है जब उसे अपने परिवार व बच्चों पर निर्भरता ज्यादा होती है और इस समय पर उन्हें घर व परिवार से अलग करने की रणनीति परिवार में बनने लगती है। इससे उनमें पराबलंबन की भावना आती है।

वृद्धों पर किए गए अध्ययन से ज्ञात होता है कि शहरों की मलिन बस्तियों में रहने वाले पुरुष वृद्धों की मध्य आयु 66 वर्ष है। और इन बस्तियों के अधिकतर वृद्ध पिछड़े वर्ग के होते हैं। लेकिन वे व्यवस्थित नहीं हैं। 3 से



6 सदस्य के परिवार में रहने वाले इन वृद्धों को 3 से 4 संतानें हैं। अधिकांश वृद्धों को तंबाखू व शराब दोनों का व्यसन है। 50 प्रतिशत से अधिक वृद्ध अभी भी जीवन यापन के लिए कमाई करते हैं जिसकी मासिक आय 2000 रुपए है एवं अधिकांश वृद्ध स्वयं के घर में रहते हैं।

अधिकांश वृद्धों को स्वास्थ्य सेवाओं में अभाव की समस्या काफी तीव्रता से महसूस होती है। वृद्धों की दूसरी बड़ी समस्या आर्थिक असुरक्षा की है। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें आर्थिक संसाधनों की कमी महसूस होती है। तीसरी प्रमुख समस्या परावलंबन की भावना, समाज एवं परिवार में अनादर, अकेलेपन की भावना, अनुपयोगिता की भावना इत्यादि समस्याएं हैं जो वृद्धों को महसूस होती हैं और उन्हें आहत करती हैं।

वृद्धों के मतानुसार वृद्ध लोग समाज के लिए बहुत उपयोगी हो सकते हैं लेकिन उनके अनुभवों का उपयोग समाज अच्छी तरह नहीं कर रहा है। अधिकांश वृद्धों ने अपनी समस्याओं के निराकरण के लिए यह सुझाव दिया कि बच्चों को समाज के लोगों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए

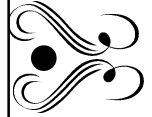
जिससे वे वृद्धों को आदर करना सीखें। दूसरा मुख्य सुझाव आर्थिक सहायता का है। आर्थिक समस्या इस अवस्था में प्रमुखता से उभर कर सामने आई है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक समस्या वृद्धों की प्रमुखतम समस्या है और इन वजह से संशोधन कर्ताओं का सुझाव है कि मलिन बस्तियों में वृद्धों के लिए बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराई जाएं एवं स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना जरूरी है। वृद्धों की आर्थिक समस्या कम करने के लिए और अकेलेपन की भावना को कम करने के लिए वृद्धों के लिए स्वयं सहायता समूह विकसित किए जाएं, जिससे उन्हें आर्थिक सहायता मिलेगी। उनका अनुभव विकसित होगा और अकेलेपन की भावना भी कम होगी। बस्तियों में पारिवारिक जीवन-शिक्षा के क्षेत्र में कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए, जिससे वृद्धों की देखभाल एवं उनके प्रति उचित आदर से संबंधित बातें लोगों को पता चलें।

(लेखक समाजसेवी हैं।
साभार : पीपुल्स समाचार)



“This is my simple religion. There is no need for temples; no need for complicated philosophy. Our own brain, our own heart is our temple; the philosophy is kindness.”

-Dalai Lama





खाद्य सुरक्षा व भंडारण की समस्या

● डॉ. हनुमन्त यादव

संसद में प्रस्तुत किए जाने वाले खाद्य सुरक्षा बिल के वर्तमान दायरे को बढ़ाने की बजाय सार्वजनिक वितरण प्रणाली को चुस्त बनाने एवं क्रियान्वयन को मजबूत करने की जरूरत है। उसी प्रकार सरकार को भंडारण हेतु नए गोदामों के निर्माण पर भारी भरकम खर्च करने की बजाय भंडारण व्यवस्था को छिद्ररहित बनाने का प्रयास करना चाहिए। एक बड़ी मात्रा में अनाज भारतीय खाद्य निगम की खरीदी के पहले ही अनायास वर्षा या प्राकृतिक आपदा से खराब हो जाता है, इसके लिए किसान के खेत में फसल कटाई के समय से लेकर से मंडी के प्रांगण तक भी फसल उत्पादन की सुरक्षा भी जरूरी है।

भा | रत में सरकारी क्षेत्र में खाद्य भंडारण क्षमता सदैव ही जरूरत से कम रही है। भारतीय खाद्य निगम के पास केवल 340 लाख खाद्यान्न की भंडारण क्षमता है, जिसमें केन्द्र व राज्य वेयर हाउसिंग निगमों तथा निजी क्षेत्र से किराए पर लिए गए गोदामों की भंडारण क्षमता में इसके परिसरों में खुले में रखे जाने वाले 35 लाख टन खाद्यान्नों की भंडारण क्षमता भी सम्मिलित है। भारतीय खाद्य निगम के पास सेन्ट्रल पूल में 1 मई 2013 को गेहूँ, चावल तथा अन्य खाद्यान्नों का कुल मिलाकर का 628 लाख टन स्टॉक था। इस साल अच्छी फसल तथा खरीद की संभावनाओं को देखते हुए 800 लाख टन स्टॉक के पहुंचे जाने की संभावना है। भारतीय खाद्य निगम के नए गोदामों के निर्माण कार्य पूरा होने पर 47 लाख टन तथा पेग योजना के तहत निजी क्षेत्र के गोदामों में 20 लाख टन भंडारण क्षमता जुड़ने के बावजूद भंडारण क्षमता में कमी बने रहने वाली है।

जुलाई महीने में ही खुले परिसरों में रखे गेहूँ के भारी बरसात में भीग कर खराब होने के समाचार है। यह कोई नई घटना नहीं है। हर साल लाखों टन अनाज उचित रख रखाव के अभाव में सड़ने के समाचार पत्र पत्रिकाओं में

प्रकाशित होते रहते हैं। खाद्यान्न सड़ने की जानकारी सर्वोच्च न्यायालय को मिलने के बाद सरकार को सर्वोच्च न्यायालय की फटकार मिल चुकी है। न्यायालय का कहना था कि सरकार को अनाज सड़ने की बजाय जरूरतमन्द लोगों में बांट देना चाहिए। पिछले साल ही किए गए एक अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार उचित सुरक्षित भंडारण के अभाव, परिवहन में देरी तथा मानवीय लापरवाही के कारण विश्व के खाद्यान्न एवं फल व सब्जी उत्पादन का 50 फीसदी बेकार चला जाता है। इस अध्ययन के अनुसार भारत में हर साल 210 लाख टन गेहूँ भंडारण एवं अधोसंरचना सुविधाओं के अभाव में बेकार चला जाता है जो ऑस्ट्रेलिया के कुल गेहूँ उत्पादन के बराबर है। यह दुख की बात है एक ओर तो गरीबों को पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं मिल पा रहा है तो दूसरी ओर लाखों टन अनाज सड़ जाता है या चूहों की भेंट चढ़ जाता है।

ऐसी बात नहीं है कि सरकार इस स्थिति से चिंतित नहीं है। केन्द्र सरकार 150 लाख टन भंडारण क्षमता बढ़ाने का इरादा रखती है। सेन्ट्रल वेयरहाउसिंग कार्पोरेशन तथा राज्यों के स्टेट वेयरहाउसिंग कार्पोरेशन अपनी-अपनी भंडारण क्षमता बढ़ाने को प्रयासरत हैं। सरकार ने पेग के नाम से



निजी उद्यमी गारंटी स्कीम के गोदाम बनाने की योजना प्रारम्भ की है।

केन्द्र सरकार किराना व्यापार में विदेशी निवेश के अंतर्गत निवेशकों को ग्रामों में गोदाम बनाने सहित अधोसंरचना निर्माण की अनिवार्य शर्त रखी है। खाद्य सुरक्षा कानून लागू करने को ध्यान करने में रखते हुए अगले 10 वर्षों में अनाज भंडारण क्षमता बढ़ाने हेतु एक योजना तैयार करने के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा एक उच्च अधिकार समिति का गठन किया गया था। उक्त समिति का अभिमत था कि नए गोदामों के निर्माण पर भारी भरकम खर्च करने की बजाय मौजूदा भंडारण क्षमता का नई तकनीक द्वारा बेहतर उपयोग से प्रयोजन पूरा किया जा सकता है।

5 अगस्त से प्रारंभ होने वाले संसद के वर्तमान सत्र में केन्द्र सरकार खाद्य सुरक्षा बिल जहां तक हो सके मौजूदा स्वरूप में पास करवाना चाहती है। वैसे तो इस बिल में संशोधन व एक से बढ़कर एक नायाब सुझाव देने वालों की कमी नहीं है। राजनीतिक दलों में सीपीएम 90 प्रतिशत नागरिकों को खाद्य सुरक्षा के दायरे में लाना चाहती है। वहीं कुछ बुद्धिजीवी देश को मांसाहारी जनता की खाद्य सुरक्षा हेतु रियायती कीमतों पर पेकबन्द मांस तथा मछली की भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकानों से पूर्ति की व्यवस्था चाहते हैं। यदि वर्तमान खाद्य सुरक्षा बिल के दायरे को बढ़ाने की मांग को स्वीकार करके मौजूदा स्वरूप में परिवर्तन किया गया तो पीडीएस के लिए तीन गुना अधिक राशि की जरूरत पड़ेगी। पहले से ही बढ़े बजटीय घाटा को चिन्ताओं से घिरे वित्तमंत्री इस स्थिति से बचना चाहेंगे क्योंकि अनुपूरित बजट घाटा बढ़ने का मतलब मुद्रा स्फीति की रफ्तार बढ़ने से महंगाई बेकाबू हो जाएगी।

मेरा ऐसा मानना है कि देश के निम्न आय व निम्न मध्यम आय वर्ग के समस्त परिवार खाद्य सुरक्षा बिल के मौजूदा स्वरूप में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दायरे में

आ जाएंगें। उच्च आय वर्ग के 10 प्रतिशत परिवारों व 20 प्रतिशत उच्च-मध्यम वर्ग के परिवारों को सार्वजनिक प्रणाली के अंतर्गत सब्सिडी द्वारा रियायती कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध करवाने की जरूरत नहीं है। उच्च किस्म के खाद्य पदार्थों के अभ्यस्त इन परिवारों को पीडीएस का खाद्यान्न पसन्द ही नहीं आएगा। भूतकाल में इन वर्गों की रुचि पीडीएस की दुकानों से चीनी खरीदने की रही है। खाद्यान्न भंडारण की समस्या को कम करने के लिए उच्च-मध्यम वर्ग को खरीफ व रबी को फसलों के बाजार में आने पर उनके परिवार की 6 माह की आवश्यकता के अनुसार खाद्यान्न खरीद करके आवास पर ही भंडारण हेतु प्रेरित करना होगा। इस वर्ग के नौकरी पेशा लोगों को उनके नियोक्ताओं से ग्रेन एडवांस का प्रावधान करवाया जा सकता है। खाद्य निगम के गोदाम में भंडारण की तुलना में आवास पर भंडारण अधिक सुरक्षित रहेगा।

संसद में प्रस्तुत किए जाने वाले खाद्य सुरक्षा बिल के वर्तमान दायरे को बढ़ाने की बजाय सार्वजनिक वितरण प्रणाली को चुस्त बनाने एवं क्रियान्वयन को मजबूत करने की जरूरत है। उसी प्रकार सरकार को भंडारण हेतु नए गोदामों के निर्माण पर भारी भरकम खर्च करने की बजाय भंडारण व्यवस्था को छिद्र रहित बनाने का प्रयास करना चाहिए। एक बड़ी मात्रा में अनाज भारतीय खाद्य निगम को खरीदी के पहले ही अनायास वर्षा या प्राकृतिक आपदा से खराब हो जाता है, इसके लिए किसान के खेत में फसल कटाई के समय से लेकर से मंडी के प्रांगण तक भी फसल उत्पादन की सुरक्षा भी जरूरी है। कम कीमत पर हवारोधी बड़े आकार के 200 टन क्षमता तक के पॉलीथीन बोरे किसानों को उपलब्ध करवा कर किसानों को नुकसान से बचाया जा सकता है तथा खाद्यान्न की राष्ट्रीय क्षति को रोका जा सकता है।

(साभार : देशबंधु)





रैगिंग एक परंपरा है इससे छात्रों में इसे जारी रखने का भाव आता है अतः इस प्रथा को पूर्णतः तोड़ना जरूरी है

रैगिंग : प्रभावी उपाय जरूरी

• प्रो. बृज किशोर कुठियाला



रैगिंग की रोकथाम में प्रशासन के आदेशों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, परन्तु अध्यापकों को स्वप्रेरणा से यह कार्य करना होगा। नये पुराने विद्यार्थियों में परिचय और सहज संबंधों का निर्माण एक अनिवार्यता है। इसको विद्यार्थियों पर न छोड़कर यदि महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के प्रशासन को अपने हाथ में लेकर योग्य अध्यापकों की निगरानी में सम्पन्न कराएं तो रैगिंग को रोका जा सकता है।



रैगिंग पर नियंत्रण करने के लिए उच्चतम न्यायालय ने कई बार दिशा-निर्देश दिए हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी कड़े कदम उठाए हैं। व्यावसायिक महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में रैगिंग से विद्यार्थियों को बचाने के लिए अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद ने भी कठोर आदेश दिए हैं। भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय ने भी अपने यहां रैगिंग की शिकायत के लिए टेलीफोन नम्बर और ई-मेल की सुविधा विद्यार्थियों और अभिभावकों के लिए दी है। राज्य सरकारें भी रैगिंग की समस्या को सुलझाने के लिए गंभीरता से प्रयासरत हैं। इन सबके बावजूद हर वर्ष रैगिंग के नए-नए रूप सामने आ रहे हैं। रैगिंग के कारण से आत्महत्या और हत्या की वारदातें बढ़ती ही जा रही हैं। ऐसा लगता है कि सभी प्रकार के दिशा-निर्देशों, आदेशों और प्रयासों में कहीं कोई बड़ी कमी है जिसके कारण अनेक युवा रैगिंग की मानसिक प्रताड़ना से गुजरते हैं। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जिस युवा वर्ग के छात्र-छात्राएँ शिकार होते हैं। वह युवा वर्ग देश के भविष्य का महत्वपूर्ण निर्माता है।

रैगिंग अंग्रेजी का शब्द है और हिन्दी या किसी भी भारतीय भाषा में इसका पर्यायवाची या मिलता-जुलता भी शब्द नहीं है। इसका अर्थ यह है कि रैगिंग हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति का भाग नहीं है। आधुनिकीकरण के

कारण से एक तरफ तो सामाजिक विकास की गति बढ़ती है दूसरी ओर रैगिंग जैसी विकृतियाँ भी उत्पन्न होती हैं। हर प्रकार की रैगिंग का प्रारंभ नए और पुराने विद्यार्थियों के बीच परिचय से होता है जिसको सहज रूप से मित्रता, सहयोग और भाईचारे में बदलना चाहिए।

परन्तु सैकड़ों उदाहरण हर वर्ष ऐसे देखने में मिलते हैं, जब यही मैत्री पूर्ण परिचय अप्रिय और अमानवीय हो जाता है और नए और पुराने विद्यार्थियों में द्वेष, क्रोध, खीज, बदले की भावना और ईगो का विषय बन जाता है। अनेक मामलों का अध्ययन करने से एक आम बात जो सामने आती है वह है, पुराने विद्यार्थियों में वर्चस्व की भावना का हावी होना।

रैगिंग का एक महत्वपूर्ण कारण विद्यार्थी यह भी बताते हैं कि जब उन्होंने महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था तब उनकी भी रैगिंग ली गई थी इसलिए उन्होंने इस प्रथा को जारी रखना चाहा। परंपरा होने के कारण उनमें बदले का भाव आता है। यह निष्कर्ष लगभग सर्वमान्य है। इसलिए यदि गंभीर और केन्द्रित प्रयास करके उच्च शिक्षा संस्थाओं में कुछ वर्षों के लिए रैगिंग को पूरी तरह से रोक दिया जाए तो भविष्य में यह विकृति उत्पन्न होने की संभावना लगभग शून्य हो जाती है। यह ऐसे ही है जैसे- पोलियो, हैजा या प्लेग के वायरस को ध्वेय



बनाकर समाप्त करना। उच्चतम न्यायालय के निर्देश भी इसी तरह की नीति अपनाने का सुझाव देते हैं।

वर्तमान भारतीय शिक्षा की एक ओर कमजोरी है। विद्यालय से महाविद्यालय में जाने का मार्ग सहज न होकर झटकों वाला है। 12वीं कक्षा का विद्यार्थी विद्यालय के अनुशासन में रहता हुआ युनिफार्म पहनकर निर्धारित समय से स्कूल आता जाता है, स्कूल में समय सारणी के अनुसार कक्षाएं होती हैं और आमतौर से कक्षाओं में गंभीर शिक्षण होता है। विद्यालय में खाली समय में लगभग नहीं के बराबर, विद्यालय के पश्चात भी गृह कार्य में विद्यार्थी व्यस्त रहता है। 12वीं कक्षा के पश्चात महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में जाते ही हालात एकदम उलट जाते हैं। ऐसा पाया गया है कि उच्च शिक्षा में सत्र के प्रारंभ में कक्षाएं गंभीरता से नहीं होतीं, क्योंकि प्रवेश प्रक्रिया लंबी चलती है। प्रथाएं भी ऐसी बन गई हैं कि पढ़ाई का प्रारंभ विलंब से ही होता है। मुक्त वातावरण और महाविद्यालय में खाली समय विद्यार्थियों को आपस में मिलने-जुलने के लिए उत्साहित करता है। इसी वातावरण में वरिष्ठ विद्यार्थी अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए नए विद्यार्थियों पर रौब जमाते हैं। अनेक बार यह पारस्परिक संवाद सीमा लांघ जाता है और नए विद्यार्थियों से अश्लील, असहज वार्ता और अनुचित हरकतें कर दी जाती हैं। यदि उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के प्रारंभ में ही गंभीरता से शिक्षण का कार्य प्रारंभ हो जाए तो बहुत हद तक रैगिंग के मौके कम हो जाएंगे।

इसके लिए प्रशासन एवं शिक्षकों को अपने दायित्वबोध का ईमानदारी से पालन करना आवश्यक है। इस कार्य में प्रशासन के आदेशों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, परन्तु अध्यापकों को स्वप्रेरणा से यह कार्य करना होगा। नए और पुराने विद्यार्थियों में परिचय और सहज संबंधों का निर्माण एक अनिवार्यता है। इसको विद्यार्थियों पर न छोड़कर यदि महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के प्रशासन को अपने हाथ में लेकर और योग्य अध्यापकों की निगरानी में सम्पन्न कराए तो रैगिंग को काफी हद तक रोका जा सकता है। यह कार्य एक से अधिक बार विभिन्न विद्यार्थियों के बीच होना चाहिए और केवल परिचय तक

सीमित नहीं रहना चाहिए। इसमें थोड़ा बहुत सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी अंश हो तो नए और पुराने विद्यार्थियों में सुगमता से सहज संबंध बनने प्रारंभ होंगे।

पिछले कई वर्षों का अनुभव हमें यह भी सिखाता है कि रैगिंग करने वाले विद्यार्थियों को कठोर दण्ड देने से रैगिंग में बहुत अधिक कमी नहीं आती है क्योंकि, रैगिंग सुनियोजित कार्य नहीं है। कुछ ही पलों में एक खुन्नस मन में बनती है और फिर उसको निकालने के लिए कई तरह के घृणित और अवांछनीय कार्य विद्यार्थी कर लेते हैं। इसके लिए यदि प्रवेश करते ही नए विद्यार्थी को प्रशासन की ओर से एक-दो वरिष्ठ विद्यार्थी और एक अध्यापक का संरक्षण प्राप्त हो जाए तो रैगिंग की स्थितियों को बनने से रोका जा सकता है। क्योंकि नया प्रवेश लिए हुए विद्यार्थी को जीवन में एक नया अध्याय प्रारंभ करने की प्रसन्नता के साथ उसके मन में उत्सुकता और डर भी होता है। यह उत्सुकता और डर नियमों और भाषणों से कम नहीं हो सकता। इसके लिए तो आमने-सामने का संवाद ही प्रभावी है। इसलिए जब नए विद्यार्थी को प्रशासन द्वारा नियुक्त वरिष्ठ विद्यार्थी और अध्यापक का संरक्षण मिलेगा तो उत्सुकता और डर का निवारण बिना किसी नुकसान के हो सकता है।

ध्यान रखने के लिए यह बात भी अनिवार्य है कि रैगिंग के कारण से न केवल युवा विद्यार्थियों के मनो में कुण्ठाएं बनती हैं परन्तु बहुत बड़ी मात्रा में उच्च शिक्षा संस्थान की ऊर्जा, समय और प्रयास भी बरबाद होते हैं। रैगिंग के कारण से यदि विद्यार्थी जीवन त्यागते हैं या उच्च शिक्षा को ही त्याग देते हैं तो वह भी तो राष्ट्र की बहुत बड़ी हानि है। क्योंकि सामान्य से अच्छी गुणवत्ता वाला युवक या युवती ही उच्च शिक्षा में प्रवेश पाता है और यदि वह भविष्य में राष्ट्र के लिए उपलब्ध नहीं है तो हानि समाज की है। इसलिए रैगिंग को रोकने के लिए व्यावहारिक और प्रभावी उपाय करना हम सबका राष्ट्रीय दायित्व है।

(लेखक माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के कुलपति हैं।)

साभार : पीपुल्स समाचार

□ □ □



युवाओं को रोजगार रोटी, कपड़ा, मकान और स्वाभिमान

● इंदिरा मिश्र

भारत की विशाल जनशक्ति का सदुपयोग करने के लिये बड़ा कलेजा और बड़ा दिमाग चाहिये। बड़ा संकल्प चाहिये। हम इस बारे में कुछ करते तो नज़र नहीं आ रहे। कोई सफलता की कहानी सरकारी प्रयासों के बारे में पढ़ने के लिये हमारी आंखें कब से उत्सुक हैं। ग्रामीणों और शहरी क्षेत्रों की जरूरतें अलग हैं। उनका आकलन सिलसिलेवार सर्वे कराकर करना होगा। अपने कम्प्यूटरों को आधुनिक बनाना होगा। निजी सेक्टर की योग्यताओं का सरकार द्वारा उपयोग बढ़ाना होगा। अपनी गति बढ़ानी होगी। जिस जनसंख्या को दुनिया में ले आया गया है, उसका क्या दोष? हुनर पूंजी, शिक्षा, संयोजन कौशल, भूमि, कच्चा माल, उद्यम का साहस सब कुछ देकर उनका मनोबल बढ़ाना होगा।

आ | ज पूरा विश्व बेरोजगारी के दौर से गुजर रहा है। 2008 से शुरू होकर यूरोप और अमेरिका के बाजारों में मंदी छा गई है। भारत भी आजादी के बाद से बढ़ी हुई निश्चितता तथा स्वास्थ्य सेवाओं और अपने गर्म मौसम के चलते एक अपार जनसंख्या के बोझ तले डूब-सा गया है। सन् 1951 की जनगणना में बताया 36 करोड़ जनसंख्या के आंकड़े को अर्थशास्त्री बताते रहे कि हमारी जनसंख्या बहुत अधिक है। इसके बावजूद भी भारत में जनसंख्या वृद्धि दर लगाम लगाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। नतीजा यह है कि अब हम 121 करोड़ हो चुके हैं।

प्रकृति के साधन तो जहां के तहां ही रहते हैं। पेयजल, रहने को मकान, पहनने को कपड़ा, खाने को भोजन, यातायात, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, आंतरिक सुरक्षा, घर की अन्य सैकड़ों आवश्यकताएँ तथा रोजगार ये

सब प्रश्न हल करना हमारी सरकार की आयोजन शक्ति के बूते से बाहर होते हुए। शिक्षा के विभिन्न मसलों को लेकर डाल-डाल ही नहीं पात-पात पर ध्यान उतरना चाहिये था, उसका आधा भी नहीं दिया गया। शिक्षा की अवहेलना हमेशा महंगी पड़ती है। प्राथमिक शिक्षा में वंचित व्यक्ति तो हमेशा मजबूर, निर्धन और कुंठित ही रहता है तथा पग-पग पर ठोकर खाता है। परंतु उच्च शिक्षा से वंचित रहना भी कोई कम त्रासद नहीं है। यह कमी पूरे समाज की सुख शांति को नीचे धकेलती है। वहां न समृद्धि होती है और न स्थाई शांति।

दक्षिण भारत में शिक्षा की दशा शेष भारत से बहुत अच्छी है। इसीलिए वहां से अमेरिका तथा अन्य देशों में ऊंचे वेतन पर कार्य करने गए लोगों की संख्या अन्य प्रांतों से कहीं अधिक है। इतिहास पर गौर करें तो मैसूर के राजा ने पिछली सदी में अपने राज्य की 300 एकड़ भूमि कॉलेज



पढ़-लिखकर लोग गांवों में रहना नहीं चाहते, जबकि हमारे 70-75 प्रतिशत लोग गांव में ही रहते हैं, जिनमें से 70-75 प्रतिशत अनपढ़ होते हैं, तो पढ़ाये कौन? खेतीहर लोगों के सामने अपने बच्चों को शहर में रखकर पढ़ाने का विकल्प ही नहीं होता। शिक्षा और रहन-सहन, शहर में दोनों पर ज्यादा खर्च करना पड़ता है। उपलब्ध छात्रावासों में पर्याप्त स्थान नहीं हैं।

बनाने के लिए दान देकर एक उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया था। आज उस जगह केन्द्रीय खाद्य प्रसंस्करण संस्थान (सी.एफ.टी.आर.आई.) स्थापित है जहां कम से कम 200 लोग प्रतिदिन काम अथवा प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

आजादी के बाद शिक्षा : आजादी के बाद स्कूल शिक्षा का उतना विस्तार नहीं हुआ जितना हो सकता था। इस विषय में तो बांग्लादेश ने हमसे कहीं आगे बाजी मार ली है। वहां औसत व्यक्ति 4.8 वर्ष स्कूल जाता है। जबकि भारत में 4.4 वर्ष। वहां महिला साक्षरता 78 प्रतिशत है। जबकि भारत में 74 प्रतिशत, वहां जन्म के समय जीवन प्रत्याशा 69 वर्ष है, जबकि भारत में 65 वर्ष तथा वहां बाल मृत्यु दर 37 प्रतिशत है। जबकि भारत में 47 प्रतिशत। शिक्षा में पिछड़ने का मध्यप्रदेश जैसे राज्य में कारण यह

समझ में आता है कि वहां ग्रामीणों में पढ़े-लिखों का अनुपात ही बहुत कम है। जबकि सत्यजित रे की फिल्म 'पाथेर पांचाली' में ग्रामीण शाला का शिक्षक एक दुकानदार है, जो पंसारी की दुकान चलाते-चलाते बच्चों को पढ़ाता है।

पढ़-लिखकर लोग गांवों में रहना नहीं चाहते, जबकि हमारे 70-75 प्रतिशत लोग गांव में ही रहते हैं, जिनमें से 70-75 प्रतिशत अनपढ़ होते हैं, तो पढ़ाये कौन? खेतीहर लोगों के सामने अपने बच्चों को शहर में रखकर पढ़ाने का विकल्प ही नहीं होता। शिक्षा और रहन-सहन, शहर में दोनों पर ज्यादा खर्च करना पड़ता है। उपलब्ध छात्रावासों में पर्याप्त स्थान नहीं हैं।

संचार के साधनों के बढ़ने का एक फायदा यह हुआ है कि हर देश अपनी प्रगति की तुलना अन्य देशों से कर सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के बन जाने से दुनिया भर की सांख्यिकीय जानकारी एकत्र होने लगी है। समय-समय पर यह सभी सदस्य देशों को मिलती है। जब सांख्यिकीय जानकारी का अध्ययन किया जाता है तो यह स्थिति समझ में आती है, कि दुनिया के सभी देशों में उच्च शिक्षा से लाभ लेने वालों की संख्या कम है। ऊपर कहा गया कि भारत में औसत व्यक्ति केवल 4.4 वर्ष ही स्कूल की शिक्षा प्राप्त कर पाता है। अमेरिका में उच्चतर शिक्षा ग्रेजुएशन वर्ष 2010 में 41.7 प्रतिशत लोगों को मुहैया हो पाई थी जबकि इंग्लैण्ड में 38 प्रतिशत को फ्रांस में 29 प्रतिशत, जर्मनी में 26 प्रतिशत। भारत के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं किन्तु इतना छ.ग. के बारे में स्पष्ट है कि यहां 10 प्रतिशत छात्र ही स्कूल शिक्षा समाप्त कर कॉलेज शिक्षा में प्रवेश लेते हैं।

कम शिक्षित लोग बहुत प्रयास के बावजूद ऊंचे पदों पर नहीं पहुंच पाते। उनके ऊंची शिक्षा से वंचित रहने का एक दुष्प्रभाव यह होता है कि उनके मन में उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों के प्रति एक वैमनस्य और कटुता सहित विरोध का भाव रहता है। एक कुंठा बनी रहती है, जिसकी कार्यस्थल



पर व्याप्त एक विभाजित समाज निर्मित करने में परिणति होती है। फैक्ट्रियों में श्रमिकों तथा प्रबंधकों के बीच सामंजस्य का अभाव रहता है। स्वाभाविक गति से या अपनी मेधा तथा योग्यता के बल पर अगणी बने व्यक्ति में आत्मविश्वास तथा स्वाभिमान होता है, जबकि अपने पैसे या प्रभाव के बल पर आगे बढ़े व्यक्ति में सिर्फ अभिमान होता है।

विकसित देशों (ओ.ई.सी.डी.) सदस्यों में आज एक बड़ी चिन्ता व्यक्त की जा रही है कि वहां आज जो युवाओं

वेंडिंग मशीन से चॉकलेट, अखबार, कोल्डड्रिंक और ए.टी.एम. से पैसा निकल सकता है तो दुकानदार नहीं, इन मशीनों को दुरस्त रखने वालों की जरूरत पड़ेगी। आज भी मोबाईल फोन मरम्मत के काम में निष्णात लोगों की दुकानों पर ग्राहकों की कोई कमी नहीं, जबकि अन्य बहुत सी कल-पुर्जों की दुकानें सूनी हैं।

भारत की विशाल जनशक्ति का सदुपयोग करने के लिये बड़ा कलेजा और बड़ा दिमाग चाहिये। बड़ा संकल्प



भारत की विशाल जनशक्ति का सदुपयोग करने के लिये बड़ा कलेजा और बड़ा दिमाग चाहिये। बड़ा संकल्प चाहिए। हम इसी बारे में कुछ करते तो नजर नहीं आ रहे। कोई सफलता की कहानी सरकारी प्रयासों के बारे में पढ़ने के लिये हमारी आंखें कब से उत्सुक हैं। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की जरूरतें अलग हैं। उनका आकलन सिलसिलेवार सर्वे कराकर करना होगा। अपने कम्प्यूटरों को आधुनिक बनाना होगा। निजी सेक्टर की योग्यताओं का सरकार द्वारा उपयोग बढ़ाना होगा। अपनी गति बढ़ानी होगी। जिस जनसंख्या को दुनिया में ले आया गया है, उसका क्या दोष? हुनर पूंजी, शिक्षा, संयोजन कौशल, भूमि, कच्चा माल, उद्यम का साहस - सब कुछ देकर उनका मनोबल बढ़ाना होगा।



में बेकारी का आंकड़ा 5 से 10 प्रतिशत है - पर यह आगे और बहुत बढ़ सकता है। उसके बढ़ने से विकास अवरुद्ध होगा और सरकार पर बेरोजगार को बेरोजगारी भत्ता भुगतान करने की देनदारी बढ़ जाएगी। दूसरी ओर यह प्रवृत्ति दिखाई दे रही है कि आज सारा निवेश सूचना शक्ति को उपयोग करने में किया जा रहा है। पिछले माह अमेरिका के वाल स्ट्रीट जर्नल में यह खबर छपी थी कि हाइवेज पर माल ढुलाई के लिये ड्राइवर सहित स्वचालित ट्रकों का ईजाद हो चुका है तथा इन ट्रकों की आमद से निकट भविष्य में 57 लाख ट्रक ड्राइवर बेकार हो जाएंगे।

भारत में भी श्रमिकों को आगे आने वाले समय में वही-वही काम करते रहने की स्थिति में परिवर्तन आएगा।

चाहिए। हम इसी बारे में कुछ करते तो नजर नहीं आ रहे। कोई सफलता की कहानी सरकारी प्रयासों के बारे में पढ़ने के लिये हमारी आंखें कब से उत्सुक हैं। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की जरूरतें अलग हैं। उनका आकलन सिलसिलेवार सर्वे कराकर करना होगा। अपने कम्प्यूटरों को आधुनिक बनाना होगा। निजी सेक्टर की योग्यताओं का सरकार द्वारा उपयोग बढ़ाना होगा। अपनी गति बढ़ानी होगी। जिस जनसंख्या को दुनिया में ले आया गया है, उसका क्या दोष? हुनर पूंजी, शिक्षा, संयोजन कौशल, भूमि, कच्चा माल, उद्यम का साहस - सब कुछ देकर उनका मनोबल बढ़ाना होगा।

(साभार : देशबंधु)





रैगिंग का दर्द नहीं समझा

रैगिंग मामलों के प्रति कॉलेज प्रशासन की संवेदनशीलता दिखाई नहीं दे रही है। रैगिंग की घटनाओं की आवृत्ति से यह साफ जाहिर होता है। स्थाई उपायों को लागू करने की जरूरत है।

हिंसक होती रैगिंग का दर्द न राज्य सरकार ने समझा और न तमाम कॉलेजों के प्रबंध ने। यही कारण है कि एक छात्र को न्यायालय में जाना पड़ा और जिम्मेदारों को उनके कर्तव्य याद दिलाना पड़े। न्यायालय में यह मामला इंदौर के छात्र शिव कुमार शर्मा ने उठाया है। छात्र की याचिका पर मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने भोपाल में रैगिंग से प्रताड़ित छात्रा द्वारा आत्महत्या किए जाने के मामले को गंभीरता से लिया है। न्यायधीशों की पीठ ने प्रदेश के उच्च अफसरों, विश्वविद्यालय, कलेक्टर एवं कॉलेज प्रबंधन को नोटिस दिया है। आवेदक का कहना है कि वर्ष २००९ में जब सर्वोच्च न्यायालय ने रैगिंग के संबंध में गाइड लाइन तैयार कर उसे प्रतिबंधात्मक करार दिया था तो सरकारों ने उचित कदम क्यों नहीं उठाए। इसमें यह भी खुलासा हुआ है कि न्यायालय ने सभी राज्यों को रैगिंग की रोकथाम के लिए कमेटी गठित कर उसकी मॉनीटरिंग किए जाने के निर्देश दिए थे लेकिन ऐसा नहीं किया गया। यही कारण है कि रैगिंग का हिंसक खेल जारी है। हाल में आत्महत्या कर चुकी छात्रा भोपाल के एक कॉलेज में दो वर्षों से प्रताड़ित थी, जिसकी शिकायत कॉलेज के प्राध्यापकों से की, लेकिन किसी ने उसकी मदद नहीं की, जिस पर अनीता ने आत्महत्या कर ली थी। भोपाल में जहां कि मुख्य सचिव सहित सभी प्रशासनिक अधिकारी मौजूद रहते हैं। प्रोफेशनल पाठ्यक्रम वाले संस्थानों मेडिकल, इंजीनियरिंग, तकनीकी शिक्षा एवं मैनेजमेंट कॉलेज में रैगिंग की घटनाएं

अधिक होती हैं। सीनियर छात्र नये छात्रों को तंग करना अपना संवैधानिक अधिकार समझते हैं। ड्रेस कोड, अश्लील-फूहड़ मजाक, दिअर्थी शब्दावली का प्रयोग और वार्तालाप, अपमानित करने वाली हरकतें, किसी अनजान लड़की को प्रोपोज करना, नशे के लिए मजबूर करना आदि रैगिंग के धिनौने रूप हैं। रैगिंग का सबसे भयावह रूप हॉस्टल रैगिंग में दिखाई देता है। हॉस्टल रैगिंग के दौरान छात्रों को नंगे बदन नाचने से लेकर अपना पेशाब पीने तक के लिए मजबूर किया जाता है। इन प्रताड़नाओं से बचने के लिए अक्सर छात्रों को मजबूरन हॉस्टल छोड़ना पड़ता है। कड़ी मेहनत और अभिभावकों के अथक प्रयासों के बाद ही किसी अच्छे संस्थान में दाखिला मिल पाता है, लेकिन सारे प्रयासों और मेहनत पर तब पानी फिर जाता है जब रैगिंग रूपी दानव से घबराकर छात्र पढ़ाई छोड़ देते हैं या फिर रैगिंग के चलते अपनी जान गंवा देते हैं। भोपाल जैसी राजधानी में रैगिंग पर रोकथाम नहीं है तो प्रदेश में अन्यत्र स्थानों पर इसका और भी विकराल रूप होगा। इस समस्या से कई छात्र घबराए रहते हैं। यह समस्या तब तक खत्म नहीं होगी जब तक कि इसके लिए प्रबंधन को भी जिम्मेदार नहीं माना जाएगा। इस याचिका में यही कहा गया है कि सुप्रीमकोर्ट ने कहा था तो क्यों नहीं उचित प्रतिबंधात्मक उपाय नहीं किए गए। अब उम्मीद है अपनी जिम्मेदार अपने उत्तरदायित्वों को स्वीकार करेंगे।

(साभार : पीपुल्स समाचार - संपादकीय)





क्यों हो रहे हैं बुजुर्ग घरों से उपेक्षित !

● ज्ञानेन्द्र रावत



समाज और परिवार को भी अपनी जिम्मेवारी समझनी होगी। क्योंकि बुजुर्गों को परिवार में संरक्षण देने वाला कानून बहुत खामियों वाला है जिसे समझते हुए उसमें सुधार करना होगा। तभी कुछ सार्थक परिणाम की आशा की जा सकती है। हमारे यहां मां-बाप अपने बेटे-बेटियों की शिकायत पुलिस में करने की मानसिकता कतई नहीं रखते और बेटों-बहुओं के अमानवीय बर्ताव सहते हुए बदहाली-तंगहाली में जीते हुए मर जाते हैं।



क | हने को तो हमारे बुजुर्ग प्यार और सम्मान के हकदार हैं लेकिन असलियत में पूरी तरह उपेक्षित हैं। बीते दिनों रिसर्च एंड एडवोकेसी सेंटर ऑफ एजवेल फाउंडेशन के एक सर्वेक्षण में खुलासा हुआ है कि हमारी युवा पीढ़ी न केवल वरिष्ठजनों के प्रति लापरवाह है, बल्कि उनकी समस्याओं के प्रति जागरूक भी नहीं है। वह पड़ोस के बुजुर्गों की उपेक्षा करती है, उन्हें नजरअंदाज करती है। सर्वेक्षण के अनुसार 59.3 फीसद लोगों का मानना है कि समाज व घर में बुजुर्गों के साथ व्यवहार में विरोधाभास है। केवल 14 फीसद का मानना है कि घर-बाहर, दोनों वह बुजुर्गों की हालत में कोई अंतर नहीं है जबकि 25 फीसद मानते हैं कि घर में बुजुर्गों का सम्मान खत्म हो गया है। यह दीगर है कि कुछ फीसद की राय में घर में बुजुर्गों को सम्मान दिया जाता है। पर असलियत में परिवार के युवा घर के बुजुर्गों को हल्के में लेते हैं और बुजुर्ग उन पर अधिकार तक नहीं जताना चाहते। वह उस उम्र में सक्रिय रहना चाहते हैं। सर्वेक्षण की रपट की मानें तो 50 फीसद लोग मानते हैं कि कार्यस्थलों पर भी उनके साथ भेदभाव होता है जिसके चलते उनकी पदोन्नति प्रभावित

होती है। यानी बुजुर्ग हर जगह उपेक्षित हैं और युवा पीढ़ी उन्हें बेकार मानने लगी है। वह नहीं सोचती कि उनके अनुभव उनके बहुमूल्य हैं जो उनके जीवन में पग-पग पर महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

समाज में आज बुजुर्गों को संरक्षण देना सबसे बड़ा सवाल है कि जिसका आज सर्वथा अभाव दिखता है। देश के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री भले उनकी तादाद आठ करोड़ के आसपास बतायें जबकि संयुक्त राष्ट्र की विश्व जनसंख्या रिपोर्ट के अनुसार विश्व में 60 साल की उम्र पार कर चुके लोगों की तादाद 84.10 करोड़ है, जबकि भारत में बुजुर्ग आबादी नौ करोड़ के करीब है जो तेजी से बढ़ रही है। माना जा रहा है कि बुजुर्गों की यह तादाद 2026 के करीब 18 करोड़ के पास पहुंच जाएगी। सच है कि इतनी बड़ी तादाद के हितों को नजर अंदाज करना सरकार के लिए आसान नहीं होगा। सच है कि बुजुर्गों के लिए सरकारी प्रयासों से ही कुछ होने वाला नहीं है। समाज और परिवार को भी अपनी जिम्मेवारी समझनी होगी। क्योंकि बुजुर्गों को परिवार में संरक्षण देने वाला कानून बहुत खामियों वाला है जिसे समझते हुए उसमें



सुधार करना होगा। तभी कुछ सार्थक परिणाम की आशा की जा सकती है। हमारे यहां मां-बाप अपने बेटे-बेटियों की शिकायत पुलिस में करने की मानसिकता कतई नहीं रखते और बेटों-बहुओं के अमानवीय बर्ताव सहते हुए बदहाली-तंगहाली में जीते हुए मर जाते हैं। कभी-कभी अदालत का दखल भी इसमें कुछ नहीं कर पाता। वृद्धावस्था जीवन का अंतिम पड़ाव है। इस दौर में व्यक्ति का जीवन सम्मान सहित और कुशलता पूर्वक कट जाए, यह बहुत बड़ी बात है। अनेक बुजुर्गों को बुढ़ापे में दर-दर की ठोकें खानी पड़ती हैं। उन्हें सर छिपाने के लिए छत, खाने को दो जून रोटी और तन ढकने को कपड़ा तक मयस्सर नहीं होता। यह समस्या तो आज समूचे देश की है।

बाल्यावस्था में भगवान बुद्ध एक कृशकाय वृद्ध की दयनीय दशा देखकर द्रवित हो उठे थे, उनका हृदय वितृष्णा से भर गया था। इसीलिए कुछ लोग वृद्धावस्था को जीवन का अभिशाप मानते हैं। क्योंकि इस अवस्था तक आते-आते शरीर के सारे अंग शिथिल पड़ जाते हैं और इंसान की जिंदगी दूसरे की दया-कृपा पर निर्भर हो जाती है। परमुखोपक्षी बने उस इंसान को ऐसी दशा में जिंदा रहना भार लगता है और वह चाहता है कि उसे जिंदगी से निजात मिल जाए। इन हालात में व्यक्ति मानसिक तनावों से ग्रस्त रहता है। उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है या स्वभावतः वह क्रोधी हो जाता है और उसकी याददाशत अक्सर कमजोर हो जाती है। कभी कभी तो वह बचपन के दिनों की याद में ऐसा खो जाता है कि उसे लगता है कि आखिर वह जिंदा क्यों है और किसके लिए जिंदा है।

वृद्धावस्था में संतान की स्थिति का जायजा लें तो पता चलता है कि माता-पिता के वृद्धावस्था पहुंचते-पहुंचते संतान अक्सर उनसे छुटकारा पा लेना चाहती है। वह मां-बाप को बोझ और अपने ऐशो आराम भरी की जिंदगी की सबसे बड़ी बाधा समझते हैं। ऐसे बच्चों को कतई यह अहसास नहीं होता कि वह उन्हीं मां-बाप की बदौलत इस ऐशो आराम की जिंदगी जीने के काबिल हुए हैं। यही मां-

बाप बच्चों की बचपन की जरूरतों से लेकर कैरियर निर्माण और शादी विवाह की जिम्मेदारी वहन करते हुए अपनी जरूरतों को नजरअंदाज कर देते हैं। यह सोचकर कि बुढ़ापे का सहारा बच्चे ही तो उनकी देखभाल करेंगे। लेकिन समय के साथ सारा गणित उलट जाता है। बेटे के विवाह के बाद तो माता-पिता की स्थिति और भी विचरणीय हो जाती है। अपवादों को छोड़ दें तो ज्यादातर बहुएं घर के बुजुर्गों की उपेक्षा और तिरस्कार में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ती। कभी-कभी धन-सम्पत्ति के बंटवारे में भी बड़े-बूढ़ों की काफी छीछालेदार होती है। आपसी मन-मुटाव और कलह इस सीमा तक बढ़ जाता है कि बेटे-बहुओं के साथ उनका रहना दुश्वार हो जाता है।

बुजुर्गों और बहू-बेटों में तारतम्य न बैठ पाने की एक बड़ी वजह पश्चिमी सभ्यता का बढ़ता प्रभाव भी है। पश्चिम का अंधानुकरण बड़े-बूढ़ों को रास नहीं आता और बहू-बेटों को बुजुर्गों का यह दखल नहीं सुहाता। संतान द्वारा उनके आदेश का अनुपालन न होना, बुजुर्गों को अपमान प्रतीत होता है। अक्सर सेवा से अवकाश लेने के बाद व्यक्ति का दैनिक क्रम अव्यवस्थित हो जाता है और वह अपने को बेकार महसूस करता है। ऐसे में उसको अपने को ज्यादा से ज्यादा समय व्यस्त रखने का प्रयास करना चाहिए।

इसका अहसास हर युवा को होना चाहिए कि वृद्धावस्था हमारे जीवन का आखिरी चरण है और इस स्थिति में सभी को पहुंचना है। उनके अनुभव हमारे लिए अमूल्य धरोहर हैं जिन्हें संजोकर रखना हमारा कर्तव्य है। इनसे सीख लेकर हम कामयाबी हासिल कर सकते हैं। घर-परिवार के साथ सरकार का भी दायित्व है कि वह वृद्धाश्रम, वृद्धावस्था पेंशन और उनके पुर्नवास की योजनाएं आदि लागू कर बुजुर्गों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करें। समाज की थाती वृद्धजन अपने को असहाय उपेक्षित महसूस न करें, यह घर-परिवार, समाज व सरकार सबका प्रयास होना चाहिए।

(साभार : राष्ट्रीय सहारा)





भारत के लाखों अभी भी 1.25 डॉलर प्रतिदिन और प्रतिशित लोग 2 डॉलर प्रतिदिन से कम पर गुजारा कर रहे हैं

परेशान होना है ग्लोबलाइजेशन

● रामेश जौरा

“वैश्वीकरण के दो चेहरे हैं। एक में अंतर्राष्ट्रीय बाजार के खुलने से खुशहाली आई तो दूसरे में दुर्दशा। शोधकर्ताओं का कहना है कि ‘विकास के संबंध में वैश्वीकरण के प्रभाव को समझने के दो तरीके हैं, देशों पर पड़ने वाला कुल प्रभाव एवं देश के भीतर रह रही जनसंख्या पर विकास का अध्ययन।”

वैश्वीकरण के आर्थिक लाभों का ढिंढोरा पीटने वालों के लिए विश्व के समृद्धतम 34 देशों के संगठन द्वारा तैयार यह रिपोर्ट आंखें खोलने वाली है। इसमें स्पष्ट दर्शाया गया है कि वैश्वीकरण का लाभ बहुत समिति वर्ग को मिला है। चीन जहां इससे अत्यंत लाभाविन्त हुआ है वहीं दूसरी ओर भारत जैसे देशों में अत्यंत निर्धनों की संख्या में वृद्धि हुई है।

क्या वैश्वीकरण से विकास होता है? यदि आप ओईसीडी की रिपोर्ट को खंगालेंगे तो पाएंगे कि वर्तमान वित्त व्यवस्था के धराशायी होने के पहले से ही जोखिम में पड़े लोग अधिक संकट में आ गए हैं और कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण अमीर को और अमीर तथा गरीब को अधिक गरीब बनाने में मददगार रहा है। इस नए अध्ययन के मुताबिक सन् 2011 में निर्धनतम देश सन् 1980 के मुकाबले ज्यादा गरीब हो गए हैं और यहां की अधिकांश आबादी एक डॉलर प्रतिदिन से कम पर गुजारा कर रही है। इस रिपोर्ट को जिन 34 देशों के संगठन ने तैयार किया है, वे मुख्यता और औद्योगिक एवं कुछ उभरती अर्थाव्यवस्थाएं हैं। जहां कुछ देश इनका अनुकरण कर रहे हैं वही तमाम देश अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के खुल जाने से कमजोर हुए हैं।

विश्व में दारुण गरीबी अभी भी कुछ क्षेत्रों में पाई जाती है। अनेक देशों में असमानताएं बढ़ी हैं। गौरतलब है कि वैश्वीकरण भी तभी विकास में सहायक होता है जबकि विशिष्ट राजनीतिक परिस्थितियां विद्यमान हों।

इस अध्ययन का शीर्षक है, ‘आर्थिक वैश्वीकरण: उद्गम एवं परिणाम’ इसके लेखक वैश्वीकरण से जुड़ी दो कहानियां प्रस्तुत करते हैं। ‘बारह बरस पहले’ व्यावसायिक सौंदर्य प्रसाधन विशेषज्ञ सिलाव एवं उनकी साझेदारी नीनो उत्तरपूर्वी ब्राजील के ग्रामीण प्रांत को छोड़कर साओ पाओलो के उपनगर में बस गई। दो दशक की राष्ट्रीय आर्थिक स्थिरता एवं निरंतर वृद्धि के परिणामस्वरूप पिछले 10 वर्षों में इस अंचल की बेरोजगारी दर में आश्चर्यजनक गिरावट देखने में आई। यह सफलता ब्राजील की अर्थव्यवस्था द्वारा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में घुसपैठ की वजह से मिली। पिछले 20 वर्षों में ब्राजील की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भागीदारी दुगुनी हो गई है। इससे अनेक परिवारों को रोजगार मिला एवं उनकी क्रयशक्ति में भी वृद्धि हुई। उनका कहना है ‘हमारे पास पहले की बनिस्वत काफी अधिक अवसर हैं।’ आज उनके पास एक छोटी कार, मोबाइल और स्वास्थ्य बीमा है। वे अब पुनः विद्यालय जाकर नर्सिंग



ठीक इसी माली की राजधानी बामाको से 250 किलोमीटर दूर एक किसान याकोबा त्राओरे मालिअन टेक्सटाइल डेवलेपमेंट कंपनी की शिकयत कर रहा है। यह कंपनी माली के कपास उत्पादकों एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार के मध्य का कार्य करती है। उनका कहना है कि 'गत वर्ष उन्होंने मुझे प्रति किलो कपास के बदले 210 फ्रेंक दिए थे। लेकिन इस वर्ष केवल 150 फ्रेंक ही दिए। अच्छी गुणवत्ता के बावजूद माली की कपास विकसित देशों के किसानों द्वारा उत्पादित कपास का मुकाबला नहीं कर सकती, क्योंकि उन्हें सब्सिडी नहीं मिलती। इसी सब्सिडी की वजह से अमीर देशों के किसान विलासितापूर्ण जीवन जी पाते हैं।'



की पढ़ाई करना चाहती है। वह कहती हैं, 'मुझ में अब अधिक आत्मविश्वास है और भविष्य हम पर मुस्करा रहा है।'

ठीक इसी माली की राजधानी बामाको से 250 किलोमीटर दूर एक किसान याकोबा त्राओरे मालिअन टेक्सटाइल डेवलेपमेंट कंपनी की शिकयत कर रहा है। यह कंपनी माली के कपास उत्पादकों एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार के मध्य का कार्य करती है। उनका कहना है कि 'गत वर्ष उन्होंने मुझे प्रति किलो कपास के बदले 210 फ्रेंक दिए थे। लेकिन इस वर्ष केवल 150 फ्रेंक ही दिए। अच्छी गुणवत्ता के बावजूद माली की कपास विकसित देशों के किसानों द्वारा उत्पादित कपास का मुकाबला नहीं कर सकती, क्योंकि उन्हें सब्सिडी नहीं मिलती। इसी सब्सिडी की वजह से अमीर देशों के किसान विलासितापूर्ण जीवन जी पाते हैं।'

खाद्य पदार्थों की बढ़ती कीमतों ने स्थितियों को और भी बदतर बना दिया। आयातित चावल जो कि स्थानीय चावल से भी सस्ता है का मूल्य 250 फ्रेंक से बढ़कर 350 फ्रेंक प्रति किलो हो गया। छः बच्चों के पिता याकोबा का कहना है, 'मेरी कमाई दिनोंदिन कम होती जा रही है, जबकि महंगाई लगातार बढ़ रही है। किसी आश्चर्य के चलते ही मैं अगले वर्ष अपने दो छोटे बच्चों को विद्यालय

भेज पाऊंगा।'

ये वैश्वीकरण के दो चेहरे हैं। एक में अंतर्राष्ट्रीय बाजार के खुलने से खुशहाली आई तो दूसरे में दुर्दशा। शोधकर्ताओं का कहना है कि 'विकास के संबंध में वैश्वीकरण के प्रभाव को समझने के दो तरीके हैं, देशों पर पड़ने वाला कुल प्रभाव एवं देश के भीतर रह रही जनसंख्या पर विकास का अध्ययन।'

वे स्पष्ट कहते हैं, 'निश्चित तौर पर देश का विकास जनसंख्या के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन यह जुड़ाव स्वतः ही नहीं हो जाता। वैश्वीकरण की वजह से विकासशील देश भी समृद्ध देशों के समकक्ष आने के प्रयास में हैं। लेकिन विश्व जनसंख्या में अमीरों और गरीबों के बीच की खाई और चौड़ी हो गई है।'

इसके बावजूद पिछले 20 वर्षों के तेज वैश्वीकरण के चलते अति दरिद्रता में विश्वव्यापी कमी आई है। सन् 1990 से एक डॉलर से कम पर गुजारा करने वालों की संख्या में 20 प्रतिशत यानी 50 करोड़ व्यक्तियों की कमी आई है तथा इनकी कुल हिस्सेदारी 31 प्रतिशत से घटकर 19 प्रतिशत पर आ गई है, लेकिन इस संख्या में सर्वाधिक योगदान चीन के बेहतर नतीजों का है। पिछले 15 वर्षों में चीन की प्रति व्यक्ति आय में अन्य विकासशील देशों के मुकाबले ज्यादा तेजी से वृद्धि हुई है। सन् 1981 में जहां



चीन में 83.30 करोड़ चीनी 1.25 डॉलर प्रतिदिन से कम पर रह रहे थे वहीं यह जनसंख्या अब महज 20.80 करोड़ रह गई है। हालांकि विश्व का वैश्वीकरण का कारखाना पूरी क्षमता से चल रहा है, लेकिन जरूरी नहीं है कि इससे इसके पड़ोसी भी खुश हों, क्योंकि कई अन्य देशों में गरीबी घटाने के बजाए बढ़ रही है।

यदि दक्षिण एशिया को लें तो यहां ऊंची विकास दर के बावजूद गरीबी में रहने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि हुई है। भारत की दरिद्र जनता का उदाहरण लें। इनकी संख्या 15 वर्षों की इसी अवधि में 3.6 करोड़ बढ़ गई है। हालांकि कुल जनसंख्या में वास्तव में गरीबी 58 प्रतिशत से घटकर 42 प्रतिशत पर आ गई है। इसके बावजूद भारत के लाखों-लाख अभी भी 1.25 डॉलर प्रतिदिन और 75 प्रतिशत लोग 2 डॉलर प्रतिदिन से कम पर गुजारा कर रहे हैं।

दूसरा मामला उप सहारा अफ्रीका का है। यह अभी विकास के नाम पर पिछड़ा हुआ है। पिछले 30 वर्षों से यहां की पूरी 50 प्रतिशत आबादी गरीबी में रह रही है।

एक शोध का मानना है कि हमेशा से ऐसा नहीं था। सन् 1970 में विश्व के 11 प्रतिशत अत्यंत गरीब अफ्रीका में रहते थे बनिस्बत 70 प्रतिशत एशिया के। लेकिन पिछले 30 वर्षों में यह अनुपात एकदम उल्टा हो गया है। यानि विश्व के कुछ क्षेत्र अधिक गरीब हुए हैं।

इस अध्ययन में यह भी स्वीकार किया गया है कि वैश्वीकरण से सभी विकासशील देश लाभान्वित नहीं हुए हैं। अनेक देश पिछले 20 वर्षों से एक ही जगह स्थिर हैं। सन् 2006 में विश्व के 42 देशों की प्रतिव्यक्ति आय 875 डॉलर से अधिक नहीं थी। इनमें 34 देश उप सहारा अफ्रीका (मेडागास्कर, गुइनिआ गणराज्य, कांगो) में, 4 लेटिन अमेरिका में (बोलिविया, गुयाना, हॉंडुरास निकारगुआ) एवं एशिया में तीन (म्यांमार, लाओस, वियतनाम) शामिल हैं। विश्व के 49 कम विकसित देशों में संयुक्त राष्ट्र संघ की परिभाषा के अनुसार बांग्लादेश, यमन और हैती शामिल हैं।

(लेखक सामाजिक बदलावों के शोधकर्ता हैं।)

साभार : पीपुल्स समाचार



“An eye for an eye only ends up making the whole world blind.”

-Mahatma Gandhi

“First they ignore you, then they laugh at you, then they fight you, then you win.”

-Mahatma Gandhi





शिक्षा का अधिकार : पहुंच और प्रभाव

सुदीप कुमार श्रीवास्तव “दीप”

भा | रतीय संस्कृति में हमेशा से “शिक्षा” का महत्व विश्व भर में जाना जाता रहा है। इसीलिए तो विश्वगुरु के नाम से विख्यात रहा है और विदेशों ने भी हमारी संस्कृति एवं शिक्षा को अपनाया है और हमने विदेशी संस्कृति एवं शिक्षा को।

“यद्यपि सब जानते हैं कि बालिका एवं महिला शिक्षा अत्यन्त दयनीय है और सारी दुनिया मानती है कि बगैर इनकी शिक्षा के परिवार और समाज का समुचित विकास सम्भव नहीं है तथापि शिक्षा के क्षेत्र में नये नये प्रयोगों का इस्तेमाल किया जाता रहा है किन्तु शिक्षा का अधिकार दिलाया जाना संभव नहीं हो पाया है।”

भारत वर्ष में शिक्षा का महत्व हमेशा से ही रहा है यहाँ पर गुरुकुलों एवं विश्वविद्यालयों का बोलबाला रहा है चाहे वे नालंदा या तक्षशिला रहे हों। इन गुरुकुलों में चीनी, जापानी एवं अन्य देशों के विद्यार्थियों ने आकर अध्ययन किया था। इसी समय शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है सुकरात, सांदिपनी, द्रोण, बल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य इत्यादि जैसे गुरुओं एवं नालंदा के तत्कालीन प्राचार्य श्री रामपाल की शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। तत्कालीन समय में विद्यार्थियों का बहुमुखी विकास कराया जाता था जिसमें अभिभावकों की पूर्ण सहमति या गुरुओं की अनुमति होती थी। इन्हीं कारणों से शिष्यों ने विश्व में अपनी शिक्षा की मशाल दी है।

**कबीर ने कहा भी है....गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ,
गढ़ गढ़ काढ़े खोट।**

अन्दर होंथ सहारा देत, बाहर मारे चोट।।

अर्थात कोई भी गुरु हो अथवा शिक्षक कभी भी विद्यार्थी का बुरा नहीं सोचता चाहे वह किसी भी रूप में हो। गुरु ने हमेशा से पढन-पाठन पर ध्यान दिया है और अन्य कार्यों पर ध्यान या तो अभिभावक देते थे या स्वयं विद्यार्थी चाहे वह आजीविका से संबंधित हो अथवा संरक्षण की।

विद्यार्थियों ने हमेशा से ही शिक्षकों का सम्मान किया है यहाँ तक कि उनके अभिभावकों ने भी हमेशा से शिक्षकों का सम्मान किया तथा उस विद्यार्थी के भविष्य के लिए सलाह भी लीं किन्तु कभी भी उनसे आस्था नहीं खोई वल्कि उनपर श्रद्धा ही जताई है। हमारे यहां विवेकानंद जैसे शिष्य एवं महामना मदनमोहन मालवीय जैसे उदाहरण रहे हैं।

परन्तु वर्तमान समय में शिक्षा के नित नये प्रयोग ने शिक्षा, शिक्षक एवं शिक्षा प्रणाली की कमर तोड़ कर रख दी है। शिक्षा अब विकास का नहीं वल्कि व्यापार का क्षेत्र बनता जा रहा है। इस प्रणाली ने पाठ्यक्रमों से चिंतन के महत्व के विषयों से दूर कर दिया है। शिक्षा में रुचि, उत्साह, संवेदना इत्यादि जैसे अन्य रसों, छन्दों एवं अलंकारों के अध्याय समाप्त प्रायः हो गये हैं जो बड़ी ही चिन्ता का विषय है।

वर्तमान परिस्थितियों में ८६ वे संविधान संशोधन के अन्तर्गत “निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009” का उद्देश्य पूरी तरह गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के महत्व को देना है। अधिनियम की 38 धाराओं में विभिन्न प्रावधान किये गये हैं किन्तु इनमें कहीं भी शिक्षक में महत्व को बढ़ाया है...? या पाठ्यक्रम में



शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाया है? या फिर छात्र-छात्राओं को जिम्मेदार या संस्कारिक बनाने का कोई प्रावधान किया गया है, कहीं भी नहीं वल्कि छात्र-छात्राओं को एवं उनके अभिभावकों को शिक्षा का अधिकार दिये जाने के विरुद्ध शिक्षक के विरुद्ध एक औजार थमा दिया गया है जिसके सहारे वे शिक्षक को प्रताड़ित कर सकें, उन्हें नीचा दिखा सकें या फिर आए दिन घमका सकें।

कहा गया है कोई व्यक्ति नाराज हो जाए तो शिक्षक या गुरु उसे सम्भाल सकता है किन्तु यदि गुरु/शिक्षक नाराज हो जाए तो उसे भगवान भी नहीं बचा सकता।

सम्पूर्ण देश जान रहा है कि बिहार में मध्याह्न भोजन खाने से 23 बच्चों की मौत हुई जो दर्दनाक रही किन्तु उस घटनाक्रम में किसकी जिम्मेदारी, हिस्सेदारी या षणयंत्र रहा यह जानने की वजाय अन्य शिक्षकों को प्रताड़ित किया गया जो शिक्षक के मान-सम्मान के लिए ठीक नहीं है।

शिक्षक छात्र-छात्राओं के भोजन, विद्यालय की साफ-सफाई, विल्डिंग व्यवस्था, छात्र-छात्राओं की साफ-सफाई उनको विद्यालय तक लाने की जिम्मेदारी, विद्यालयीन जानकारियों के पत्रक इत्यादि में व्यस्त रहेगा तो वह कब पढेगा और कब पढ़ाएगा यह समझने का विषय है। जहां अधिनियम में यह भी उल्लिखित है कि कोई शिक्षक राष्ट्रीय कार्यों के अलावा अन्य जगह कही आसंजित नहीं किया जा सकता, फिर भी वरिष्ठ अधिकारियों की तानाशाही पर विद्यालय प्रमुख बौने साबित हो रहे हैं।

“जिस देश की शिक्षा का भविष्य नहीं....उस देश का भविष्य अच्छा नहीं हो सकता।”

सी. राजगोपालाचारी...

73 वें संविधान संशोधन में पंचायतों को पंचायत के अन्तर्गत आने वाली 29 व्यवस्थाओं की देखरेख के

साथ विद्यालय की व्यवस्थाओं को देखने एवं उनपर निर्णय लेने तथा कार्यवाही करने के अधिकार प्राप्त हैं किन्तु वे केवल शिक्षकों की ड्यूटी, उनके विद्यालयों में बनने वाले भोजन एवं निर्माण कार्यों तक ही सीमित हैं जिस कारण शिक्षकों का मान-सम्मान खतरों में रहता है। जिस विद्यालय के अभिभावक के रूप में उन्हें भूमिका निभानी चाहिए वहाँ वे एक थानेदार की भूमिका निभाते देखे जा सकते हैं।

शिक्षा की गुणवत्ता एवं पहुंच जमीनी स्तर तक आवश्यक है किन्तु उसी के अनुसार उतने ही राजनीतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक प्रयासों की आवश्यकता होनी चाहिए अन्यथा शिक्षक, शिक्षा और छात्र सामग्री की तरह व्यापार के इस मेले में देखे जाने लगेंगे जो हमारे देश के लिए घातक होगा।

यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार जहां 12.6 करोड़ बच्चे शिक्षा से वंचित हों और जिनमें 6.5 करोड़ बालिकाएँ शिक्षा से दूर हों ऐसे में शिक्षा के अधिकार की बात करना बेमानी नज़र आता है। दिन प्रतिदिन शिक्षकों को शिक्षण कार्य के अलावा अन्य कार्यों जैसे जनगणना, ग्राम भ्रमण, छात्रवृत्ति कार्य, गणवेश एवं पुस्तक वितरण, अन्य जानकारियां भरने आदि में संलग्न किया जाना, उनके स्वतंत्रता का समय पर भुगतान न किया जाना; शिक्षकों पर राजनैतिक दबाव बढ़ाया जाना एवं उन्हें संविदा के आधार पर रखा जाना आदि शिक्षा के स्तर की विसंगति को इंगित करता है। जब किसी ढाँचे का आधार ही मज़बूत न हो वहाँ इमारत की मज़बूती की कल्पना भी करना ठीक नहीं है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 नियम 10 में विभिन्न तरह की बाध्यताएँ शिक्षकों पर ज्यादा तय की गई हैं किन्तु इनके संचालन कर्ताओं को बाध्यता से मुक्त रखा गया है। राज्यों के द्वारा तय की जाने वाली कार्यप्रणाली आज भी असंवेदनशील है। राज्यों के द्वारा



“शिक्षा का अधिकार” क्रियान्वयन में जन जन तक जागरूकता का आभाव है; शिक्षकों पर काम का दबाव अधिक पर शिक्षा का दबाव कम रहा है। राज्य के संचालन कर्ताओं को अधिनियम की आत्मा का ज्ञान आज भी सही प्रतीत नहीं होता। उनके द्वारा जारी आदेशों में अल्हड़पन प्रतीत हो रहा है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम की आत्मा कहती है कि कोई भी बच्चा शिक्षा से वंचित न रहे तब इतनी सारी वाध्यताएँ क्यों.....? इसी तरह शैक्षणिक सुविधाओं में आवंटन की लापरवाही भी शैक्षणिक कार्यों में व्यवधान उत्पन्न करती है जिसकी जिम्मेदारी लिपिकीय कर्मचारियों की होती है जिन्हें शैक्षणिक कार्यों का अन्दाज नहीं होता इनकी लापरवाही पर इनपर कार्यवाही सुनिश्चित की जानी चाहिए।

आज ऐसा माना जाने लगा है कि स्वशासी विद्यालयों की शिक्षा का स्तर शासकीय विद्यालयों की तुलना में अच्छा है, जबकि योग्यता के आधार पर देखें तो हमेशा से शासकीय विद्यालयों में शिक्षक एवं उनके शिक्षण अच्छे स्तर के ही रहे हैं किन्तु उन शिक्षकों पर शिक्षण कार्यों को छोड़कर अन्य कार्यों का दबाव अधिक रहता है जिसके कारण वे अपने मूल कार्य से हटकर अन्य कार्यों में लिप्त रहे हैं जिसके कारण भी शिक्षा के स्तर पर

प्रभाव पड़ा है।

बालिका शिक्षा अत्यन्त ही आवश्यक है क्योंकि भविष्य में यही बालिकाएँ परिवार का संचालन करती हैं और शिक्षित परिवार का आधार होंगी तभी एक शैक्षिक जगत का निर्माण हो सकेगा। शिक्षा विकास के विभिन्न आयामों को जन्म देती हैं। शिक्षा - ज्ञान के लिए आवश्यक है न कि नौकरी पाने के लिए, आधारभूत शिक्षा स्वयं ही व्यक्तित्व का निर्माण कर देती है और फिर वह व्यक्ति मन चाहे आयाम को तय कर सकता है।

हमारी संस्कृति में शिक्षकों, शिक्षा एवं छात्रों का रिस्ता अटूट रहा है और शिक्षा के महत्व पर जोर दिया जाता रहा है परिणाम चाहे जो भुगतना पड़े तभी तो कहा जाता था.....

यह तनु विष की बेल है, गुरु (शिक्षक) अमृत की खान।

शीश दिए जो गुरु (शिक्षक) मिलै, तो भी सस्ता जान ॥

□ □ □

लेखक पन्ना जिले के आयोग मित्र संयोजक हैं।



“We want to live in the present and the only history that is worth a tinker’s damn is the history we make today.”

-Henry Ford





क्योंकि, किसानों को लाभदायक रोजगार नहीं

● शंकर सिंह यादव

भारत एक कृषि प्रधान देश है। तीन साल पहले की वैश्विक मंदी के दौर में हमारी अर्थव्यवस्था मजबूत बनी रही थी, तो इसका श्रेय कृषि को ही दिया गया था। आज भी जब हमारे सभी क्षेत्र विकास के मामले में कमजोर प्रदर्शन कर रहे हैं, तो कृषि अपनी जगह स्थिर है और अर्थव्यवस्था को सहारा दे रही है। इस स्थिति में भी यदि किसानों की संख्या कम हो रही है, तो इसीलिए कि अब कृषि फायदे का धंधा नहीं रही। सरकार का कहना है कि पिछले एक दशक में किसानों की संख्या में गिरावट आई है।

वर्ष-2011 में देश में 12.73 करोड़ किसान थे, इनकी संख्या घटकर वर्ष-2011 में 11.87 करोड़ रह गई है। सरकार ने किसानों की संख्या कम होने के जो कारण बताए, उनसे भी असहमत नहीं हुआ जा सकता। उसका कहना यही है कि मानसून पर आधारित कृषि, देश के विभिन्न राज्यों में बाढ़ और सूखे का प्रकोप, प्राकृतिक आपदा से फसलों को क्षति तथा कर्ज के बोझ के कारण किसान खेती से दूर हो रहे हैं, पर कुछ कारण और भी हैं, जिनकी सरकार ने चर्चा नहीं की है।

कृषि श्रमसाध्य कार्य है और प्रायः यही होता है कि किसानों को उनका लागत मूल्य भी नहीं मिल पाता। यानी, कृषि अब लाभ का कारोबार नहीं रही है। वह ऐसा धंधा बन गई है, जिसमें परिश्रम सबसे ज्यादा करना पड़ता है और फायदा सबसे कम होता है या फिर होता ही नहीं। इसमें बहुत-सा योगदान सरकार की नीतियों का है। उर्वरक और बीज सब्सिडियों को खत्म करके तो किसानों की लागत बढ़ाई ही गई है, उन पर जबरन विदेशी बीज भी थोप दिए गए हैं। इसी कारण कृषि ने अपनी स्वाभाविकता खो दी है। फिर, बढ़ती आबादी के कारण जोतों का आकार छोटा हो रहा है, इससे भी कृषि का लाभकारी स्वरूप खत्म हो रहा है।

इसका अंतिम नतीजा यह है कि किसान गांवों से

पलायन करने को मजबूर हैं। जो गांवों में रहते हैं, वे खेतिहर मजदूर बन जाते हैं, तो जो गांव छोड़ देते हैं, उन्हें शहरों में मजदूरी करनी पड़ती है। फिर, देश में मानसून का कोई नियमित स्वरूप नहीं है। बारिश के मौसम में ही देश के किसी हिस्से में अतिवृष्टि, कम वृष्टि और किसी में सूखा जैसी स्थिति बन जाती है। यह भी सच है कि पिछले 20-25 वर्षों में देश में उद्योगों को जिस तरह से बढ़ावा दिया गया है, उससे भी कृषि के प्रति लोगों का उत्साह घटा है। किसानों को फसल का उचित मूल्य नहीं मिलता और बिचौलिया उनकी मेहनत पर पानी फेर देते हैं। न तो आम उपभोक्ता न ही किसान किसी योजना का लाभ ले पाते हैं।

हाल के वर्षों में सरकार ने औद्योगीकरण को बढ़ावा देने हेतु स्पेशल इकोनॉमिक जोन जैसी योजनाएं प्रारंभ की थीं। इनके तहत उद्योग समूहों को कृषकों की उपजाऊ जमीन दी गई थी। फिर, यह भी नहीं देखा गया कि इन जोनों में काम भी हुआ या नहीं। कई राज्यों ने इसके लिए अधिग्रहीत जमीन अब मकान आदि बनाने वालों के हवाले कर दी है। यानी, किसान की जमीन भी चली गई और उस पर वह काम भी नहीं हुआ, जो होना था। ऐसी नीतियों के कारण किसान निराश हैं।

यह सही है कि लोकसभा में पारित भूमि अधिग्रहण विधेयक जब कानून बन जाएगा, तो किसानों की जमीनों का अधिग्रहण आसान नहीं होगा, पर सच यह भी है कि सिर्फ इन कानून मात्र से किसानों की स्थिति नहीं सुधरेगी। जरूरत इस बात की है कि सरकार अपनी नीतियां बदले। वह खेती को भले ही उतना प्रोत्साहित न करे, जितना उद्योगों को करती है, पर कृषि की बेहतरी के लिए कुछ तो करे। वरना, जो लोग मजबूर होंगे, जिनके पास कोई काम-धंधा नहीं होगा, वही किसानी करेंगे। एक दशक में किसानों की तादाद में आई करीब एक करोड़ की कमी का यही संकेत है।

साभार : राज एक्सप्रेस





The free lunch that works

● Nikhil Dey, Dipa sinha



The mid-day meal scheme needs greater political will, administrative accountability and personal responsibility

F or a programme so vital to the health of India's children, the death of 22 children in Chapra is a nightmare that has come to life. It is unfortunate that it takes a heart-wrenching tragedy to wake up India's middle classes to the situation faced by the poor on a daily basis. Can this calamity shake us up enough to ensure that our future generations live a healthy life? The midday meal (MDM) is an irreplaceable and crucial programme with the potential to provide food and nutrition inputs to most deserving and vulnerable sections of our population. This disaster was certainly avoidable, and accountability must be fixed. But we cannot allow this to descend into a cynical political blamegame. Over 10 crore of our children need this meal in more ways than we can imagine. We owe it to them to act together, and immediately transform this programme into something that truly delivers and is regularly discussed for all the right reasons.

The truth is that eradicating hunger and malnutrition of our children is still not a public priority. While some states like Tamil Nadu have a long history of providing cooked midday meals in schools, it took a Supreme Court order in 2001 to universalise the MDM programme. Under the right to food case, the SC ordered that every child in a government primary school must be given a hot cooked meal on every school working day. This

replaced the utterly unimaginative and inadequate system of giving 3 kg foodgrain to the child to carry home at the end of the month. Despite the wonder of watching a programme on a grand scale take shape based on a court order, the provision of school meals is implemented in at least 169 countries. The unmatched strategic value of a balanced nutritious meal in contributing to the education, health and nutrition of children has been documented by various studies across the world. Countries such as Brazil have pioneered in providing diverse school meals that include meat, vegetables and fruit, often sourced from local farmers.

The MDM scheme in our country reaches out to over 11 crore children across 12 lakh schools, employing about 24 lakh women as cooks and helpers. The scheme has multiple advantages. It encourages enrolment and attendance, addresses classroom hunger and even in better-off households, frees up working mothers from having to pack lunch. MDMs can also help dismantle untouchability, by ensuring children from different castes and backgrounds sit together, understand basic hygiene and eat food cooked by people from otherwise marginalised communities. It is also a great place to involve parents in the collective health of their children.

Despite its many problems and limitations,



the MDM has proved popular with children and parents alike. Here are the basics: the Central government provides 100 gm of foodgrain per child per day. Rs 3.11 is what is provisioned to turn that into a nutritious meal, in a 3:1 Centre-state ratio. Many states make additional contributions to improve the quality of the meal. Orissa adds 0.50 paisa, Rajasthan gives a fruit once a week, and Puducherry even gives milk. Tamil Nadu, Andhra Pradesh, Kerala, Delhi, Orissa and Chhattisgarh provide eggs. Tamil Nadu tops the list with an additional contribution of Rs 3.83 per child per day, which enables an egg a day, and much more.

The current national norms are not adequate for providing a nutritious meal to children. Inflation undermines the little that has been allocated. An evaluation by the Planning Commission in 2010 found the scheme very useful, but there are major gaps in infrastructure and delivery mechanisms. A parliamentary standing committee report from April this year also raises concerns related to quality of the meal and the fact that only 63 per cent of the kitchen-cum-stores sanctioned since 2006-07 have been constructed. Effective monitoring and grievance redress mechanisms would help better utilise meagre resources, but these are absent in most places. Norms for transparency are not strictly enforced. It is worrying that instead of discussing how the system can be fixed, in reaction to the Bihar tragedy, some people are suggesting cash transfers instead of food, or the replacement of a locally made hot meal with centralised kitchens. We cannot continue to look for the easy escape from governance failures.

These gaps need to be addressed now. In doing so, the standards of states such as Kerala and Tamil Nadu have to be made the

norm, and improved upon. Parent and community-based school management committees, mandated under the RTE, must be immediately established and involved in monitoring the quality of not just the MDMs but schools as a whole. Social audits of the scheme, as piloted in Andhra by the state social audit directorate, have already shown great potential to provide an effective platform for citizen-monitoring. Assigning monitoring responsibilities to officials at all levels from the village, block, district and state, as seen in Tamil Nadu, must be replicated. The MDM scheme also needs an effective grievance redress mechanism.

With a combination of political will, administrative accountability and personal responsibility, we can deliver. The national food security ordinance will hopefully be discussed by Parliament in a few weeks. In its current form, it incorporates provisions for MDMs at existing levels. Can we insist these be increased by providing a total of up to Rs 10 per child, per day in a 3:1 Centre-state ratio, without being told that our economy will collapse and our credit ratings will fall? Immediate passage of the grievance redress bill pending in Parliament can help by setting up an independent and decentralised mechanism where complaints are addressed effectively and in a time-bound manner. Apart from these legislative and administrative measures, nothing will help more than each of us promising to give an hour a week to our local government school, and helping in the MDM. A good quality MDM can go a long way in ensuring at least a part of the children's right to food. Our money, time and attention can make all the difference.

Sinha, with the Public Health Resource Network, is associated with the Right to Food Campaign. Dey works with the Mazdoor Kisan Shakti Sangathan and various rights-based campaigns.

(Courtesy :- Indian Express)



Food for growth

● Yoginder K. Alagh

Food security could help raise real incomes, trigger innovation in agriculture

It is true that the poor also demand non-grains. But more grain at cheaper prices will mean that they can buy more milk, vegetables, fruit, oil and sugar, which will aid nutrition.

My new book, *The Future of Indian Agriculture*, was recently released by Vice President Hamid Ansari, and the Union Minister for Rural Development Jairam Ramesh, who was an honoured guest on the occasion, made three interesting points.

First, the minister observed that agriculture in our country is diversifying because, as we become richer, we consume less of grain and much larger quantities of fruit, vegetables, eggs, milk and other kinds of food. Actually, this is a trend that is observable not only among the poor, but also among the rich, as my book has shown. Census Towns, as small market centres, are a crucial factor in gauging these changed consumption patterns. The big story of Census 2011 was expected to emerge from these towns, Ramesh said. He also pointed out how my

book showed that we tend to underestimate the future movement of people from one place to the other by about 10 per cent. He highlighted the power of the “rurban” and the book’s story of a rural-urban continuum.

Second, Ramesh pointed out the importance of water and irrigation, something that is largely underplayed in public discourse. The issue is not favoured by NGOs and the public sector needs to play a large role here.

Finally, the minister outlined in detail how then World Trade Organisation head Pascal Lamy and the chairman of the Commission for Agricultural Costs and Prices (CACP), Ashok Gulati, were forced by events to admit that India did not employ special protections for domestic produce in the same way as the



US and other developed countries, an admission, which he welcomed as a former negotiator on India's behalf at the WTO.

An informed journalist friend said that the models showed that widespread growth raised agricultural wages and, as usual, real incomes did not rise. He argued that CACP-led government studies said the same thing that is, that growth leads to higher wages. I believe, however, that this is a fallacy. In my opinion, it is the other way around. Given that food security and MGNREGA set a floor for wages in the agricultural sector, it is inevitable that some people would not like it. But the evidence of history shows that slave economies don't bring about technological change as the history of ancient Rome shows. Rising agricultural wages trigger innovation, mechanisation, newer seeds and technical advances in agriculture, leading to growth. The agriculture ministry is absolutely correct in saying that mechanisation and technology will be the key to the success of food security. The bill is not anti-growth. It will trigger growth, just as MGNREGA did, even with all its leakages.

It is true that the poor also demand non-grains. But more grain at cheaper prices will mean that they can buy more milk, vegetables, fruit, oil and sugar, which will aid nutrition. It is also true that near-universal coverage is contrary to a targeted scheme. But all the evidence shows that without universal coverage, the poorest households get left out. We have to cope with this implementation hassle until the finer details of direct transfers are worked out and the

process becomes widespread.

It is important that ideas like market-based energy prices except in the case of diesel in hill areas are adopted, rather than pooled prices. A decentralised system that draws on the "oceans" scenario to project future energy demands till 2060, proposed by Suman Bery, the chief economist at Shell, is worth studying. A nationwide food security programme that sets a minimum amount of grain that every Indian will receive, and water equity and reform suggested by a committee I chaired, set up by the ministry of water resources to draft a national framework law for the water sector, apart from energy sector reform, may be the out-of-the-box thinking that provides a way out.

It is true that financial volatility is the enemy of the pursuit of medium and long-term interests. Yet, in that sense, the US Federal Reserve's indication of the eventual withdrawal of quantitative easing, and monetary policy tightening by other Western central banks, have already established new ground rules. The BRICS countries have not taken an adversarial position, despite making some noises regarding the so-called currency wars. Zhou Xiaochuan, the governor of the People's Bank of China, has been uncharacteristically reticent. India, in fact, has welcomed it. There is some fear that the end of quantitative easing will restrict FDI to India and the other BRICS countries, so this is the time to look for partnerships.

□ □ □

*The writer is chancellor,
Central University of Gujarat
(Courtesy :- Indian Express)*



When incomes grow, but jobs elude

● Sonalde Desai



The latest NSSO data also underlines the increasing absence of women from the labour market

Every time results from one of the “thick” rounds of the National Sample Survey come out, we get into a feeding frenzy, trying to slice and dice the statistics for changes since the previous round. Since NSS large rounds are typically conducted every five years, there is perhaps some sense to it, particularly when studying consumption expenditure, although employment changes need a longer horizon. However, since this time, the 68th round follows the last thick round of 2009-10 with a bare two-year gap, this rush to judgement seems excessive. Economic changes in household well being are long-term, and instead of being euphoric, we should be suspicious of the data if we see major changes after a bare two-year interval. Moreover, the reason the NSSO conducted a second survey in 2011-12 in such quick succession was due to the unusual economic conditions in 2009-10, a drought year when some parts of the economy were affected by the worldwide recession, thus making it a bad base year for comparisons.

However, the 68th round of the NSS provides an opportunity to take stock of the economic changes in the country over the past 20 years. Comparisons of NSS data from 1993-94 with 2011-12 paint an interesting picture of the Indian economy. In broad brushstrokes, several key observations deserve attention: First, average per capita expenditure, used as a proxy for income, has grown rapidly for both urban and rural areas, although the growth in urban areas far outpaces rural growth when taking inflation into account. Rural average monthly consumption per person has grown from Rs

942 in 1993-94 (in 2011-12 prices) to Rs 1,287 in 2011-12, a 37 per cent growth. In contrast, urban expenditure has grown from Rs 1,597 to Rs 2,471, a 55 per cent increase. Although since 2009, the pace of rural expenditure growth has been more or less similar to the pace of urban growth, this fails to overcome years of rural disadvantage with average rural expenditure being only half of urban expenditure. Consumption for the top income earners in urban areas has risen even faster, so that while consumption for all sections of society has grown, the urban rich have benefited disproportionately.

Second, in spite of the boast of nearly 14 million new jobs created since 2009-10, when adjusting for population growth, with the exception of rural women, employment levels in India have been virtually stagnant. Among men, worker to population ratios (WPRs) are largely unchanged from 553 per thousand population in 1993-94 to 543 in 2011-12 for urban areas, and from 521 to 546 in rural areas; WPRs for urban women also remain at more or less the same levels, going from 155 to 147. The minor differences we see could easily be attributable to changes in population age structure. However, the decline in the WPR for rural women is large in magnitude a drop from 328 to 248 over the past two decades. This decline in employment for rural women is merely an overt sign of tremendous change in rural labour markets. It is well recognised that the contribution of agriculture to the Indian economy has declined steadily since Independence. The declining importance of



agriculture is a normal transformation accompanying economic development. Where India differs from other countries is in the lack of manufacturing opportunities and the consequent crowding of workers in agriculture. While the proportion of the GDP from agriculture has fallen by 50 per cent since 1983, the proportion of workers in agriculture has barely declined by 25 per cent. About half the Indian workforce is still concentrated in agriculture, although it accounts for only about 17 per cent of the GDP. With the declining share of agriculture in the economy, it is imperative that more and more workers move out of agriculture into non-agricultural work. To some extent, the 68th round documents this shift and for the first time, less than 50 per cent of workers are concentrated in agriculture. However, these opportunities appear to be limited, and are more easily available to men than to women. Consequently, while rural men increasingly move into non-farm work, particularly in construction labour, women appear to be stuck in agriculture, often squeezed out of the labour force.

The decline in rural women's work participation has slowed down, however. Between 2004-05 and 2009-10, rural women's WPR, including both primary and secondary activities, fell from 327 to 261 and further fell to 248 in 2011-12. This amounts to an annual decline of about 2.5 per cent in the past two years, compared to about 4.5 per cent in the prior five years. At least some of this improvement may be attributable to MGNREGA, which mandates that at least one-third of the beneficiaries be women, and men and women should be paid equally. Nonetheless, regardless of the opportunities in MGNREGA, women's exclusion from rural labour markets remains a potential concern.

How we think about this decline in women's work participation is a matter of perspective. Since a vast majority of women reside in households with employed men and with increasing engagement of men in non-farm jobs, household incomes have been rising. This may account for some of the decline in women's work participation. Thus, analysts often see this as a positive rather than negative development, with the pull factor of higher household incomes leading to women's withdrawal from the labour force to concentrate on household duties. However, the push factor due to blocked labour market opportunities cannot be easily dismissed. The pull explanation gains support from NSS data that documents similar unemployment rates for women as for men; however, an alternative data source offers a different explanation. The second employment and unemployment survey conducted by the Labour Bureau at the same time as the 68th round found the unemployment rate for rural women to be nearly double that for men, thereby lending credence to the push explanation.

A decrease in rural women's employment is at least partially responsible for the continued large gaps between urban and rural incomes. Moreover, the increasing absence of women from the labour market creates a vicious cycle that makes women invisible and reduces opportunities for women who need to work, such as poor women, or female household heads. This suggests that the solution for jobless growth may lie in improving access to non-farm employment for women.



The writer is professor of sociology at University of Maryland, US, and senior fellow at the National Council of Applied Economic Research, Delhi.

(Courtesy :- Indian Express)



Why promotion is better than protection

● Martin Ravallion



To reduce poverty, India needs to concentrate on promoting healthcare and education of the poor

It is sometimes argued that a country such as India, aiming to eliminate absolute poverty, should only be concerned about economic growth, and not worry about inequality. Is that right?

Yes, growth is (typically) good for the poor but it is no less true that inequality is (typically) bad for the poor. There is little doubt that poverty reduction does tend to come with aggregate growth, though not always, and not to the same degree. The same rate of (positive) growth can bring anything from rapid poverty reduction to little or no progress, depending on initial inequality. The more unequally the pie is shared, the less the poor gain from increases in the size of the pie.

The same inequalities tend to impede economic growth. Given credit market failures, poor people cannot borrow to finance productive investments, such as schooling for their children. So the more poor people in an economy, the more unexploited opportunities for investment and growth there will be, and hence, the longer poverty will persist. There is less growth and less of it reaches poor people. Inequality can also restrict cooperation in society, such that key public goods are under-provided, or desirable economic and political reforms are blocked by coalitions keen to preserve the status quo.

The upshot of these observations is that we should not be posing the policy choice as growth versus redistribution. That is not

where the key policy challenges are found for India today. Rather, they lie in how best to address the inequalities that impede future growth and poverty reduction as an important element of a growth-oriented reform agenda.

But it is not just income inequality that matters. I would argue that India's inequalities in human development are currently doing greater harm. Equitable, broad-based education is the key to assuring that the gains from technical progress and economic growth are widely shared. India's huge inequalities in human development represent not only lost economic opportunities today, but breed an inequitable growth process going forward. While India has seen higher growth rates since the early 1990s and poverty rates have thankfully been falling, the antecedent inequalities, especially in schooling, have meant that the country's poor have shared less in that growth than they could have.

Inequalities in education attainments interact strongly with India's growth process in determining the impact of that growth on poverty. This interaction effect is evident when one compares rates of poverty reduction across states of India. The gains to poor people from higher farm yields have not varied much across states. But the responsiveness of poverty to non-farm output growth has varied greatly. The non-farm growth process has been significantly more poverty-reducing in the states with initially



higher literacy rates. That makes sense; the more educated, better fed and healthier poor people are, the better their chances of participating in the opportunities created by an expanding non-farm market economy, and contributing to that expansion. (In this respect, China's poor had a huge initial advantage in their health and education at the time its market-oriented reforms began in the late 1970s.) And literacy helps ensure that poor people can effectively access the public services that help them escape poverty. This is not news. The importance of mass education has long been acknowledged in India. Indeed, free compulsory education to the age of 14 is a "directive principle" of the Constitution. However, implementation has lagged considerably, with large geographic differences and often poor quality schooling across the country.

Addressing India's inequalities in health and education is crucial for faster long-term progress against poverty, but it is not the only thing that matters. Rural economic growth has long been crucial to more rapid poverty reduction, both from the agriculture and unskilled-labour intensive services sectors. For many decades, there has been too little growth coming from the rural sector, while the urban economic growth process has been disappointing in its impact on poverty. There are encouraging signs of change since the early 1990s, notably with urban growth processes starting to have more impact on overall poverty. While that is good news, India still has a long way to go to assure that its poor can participate in, and contribute to, the country's growth.

The health and education of poor people must have high priority if India is to see

accelerated poverty reduction, as well as for human development more broadly. That is not what we have seen historically, where the emphasis has gone more on the health and education of non-poor people. Fixing the public delivery systems to assure better education and health for India's poor deserves to be put centre stage in discussions of how to attain more equitable growth.

Direct interventions against poverty through transfers (of cash or kind) and self-targeted workfare schemes have long had a long history in India. These have an important role in fighting poverty, and I do not think India spends too much on social protection. But poverty reduction is about promotion as well as protection, drawing on a useful distinction made by Jean Drèze and Amartya Sen some years back. The balance between these two aspects is arguably the most important thing to get right in fighting poverty. In India, I would argue that the greater attention is needed on promotion. In China, by contrast, I would argue that a shift toward protection is called for. Protection programmes can also be designed to help more with promotion. Transfers can help compensate poor families for the costs of schooling, including the forgone wages of the children. Workfare schemes can help build durable assets.

"Targeting" always comes up in discussions about anti-poverty policies. Finely targeted policies can be good for protection but bad for promotion, by imposing high costs on poor people when they try to escape poverty by other means.



The writer, a former director of the World Bank's research department, holds the Edmond D. Villani Chair of Economics at Georgetown University, US

(Courtesy :- Indian Express)



A reparative justice

For the rape victim, compensation is a right, not mercy shown by the state

● R.K. Vij



The Delhi gangrape case generated much anger against the rapists, and there was a widespread demand for the death penalty for those found guilty. Giving in to public pressure, Parliament amended the law to broaden the definition of "rape" and included provisions for the death penalty in certain cases. There is, however, scant evidence to suggest that death for rapists can be a deterrent. And in this clamour for punishment, the plight of the victims has largely been forgotten.



While directing the government of Madhya Pradesh to pay Rs 10 lakh as compensation to the victims of gangrape, the Supreme Court observed that the "trauma of rape victims continues throughout their life and such victims cannot be compensated by any amount". Lately, the SC has reiterated that the trial courts must award compensation to the victims while sentencing convicts in criminal cases. Earlier, the parliamentary committee on the empowerment of women also expressed its concern about poor implementation of the compensation and rehabilitation scheme for sexual exploitation and human trafficking cases.

The Delhi gangrape case generated much anger against the rapists, and there was a widespread demand for the death penalty for those found guilty. Giving in to public pressure, Parliament amended the law to broaden the definition of "rape" and included provisions for the death penalty in certain cases. There is, however, scant evidence to suggest that death for rapists can be a

deterrent. And in this clamour for punishment, the plight of the victims has largely been forgotten.

Our criminal justice system is based on the premise that the accused must be treated as innocent until proven guilty. Over time, this presumption has given rise to a range of rights for the accused, from free legal aid to a diligent, speedy trial. But the rights of the victim have not been paid much attention, either by the legislature or by the judiciary. The victim is generally left to the mercy of the state. The tasks of counselling and rehabilitation often fade into the background.

Ruling on Delhi Domestic Working Women's Forum versus Union of India, 1985, which dealt with the rape of domestic workers by army personnel in a running train, the SC had held that rape transgressed the fundamental right enshrined in Article 21: the right to live with dignity. If the state could not protect this right, it was liable to paying compensation. The Court also directed the



National Commission for Women to help set up a "criminal injury compensation board", in keeping with the directive principles of state policy. Compensation, the SC said, must be awarded quickly, without waiting for the courts to convict the accused.

In *Shri Bodhisattwa Gautam vs Miss Subhra Chakraborty*, 1995, for the first time, the SC directed the accused to pay an interim compensation of Rs. 1,000 every month, during the pendency of the trial. This decision eventually paved the way for a paradigm shift in the judiciary's approach towards compensation.

Following various decisions by the SC, the Central government inserted a new section, 357A, in the Criminal Procedure Code in 2009, which directs state governments to set up a victim compensation scheme in coordination with the Central government. This scheme caters to the need of financial assistance for the victim, either by the district legal services authorities directly or through an initiative undertaken by a police station in-charge. The government of Chhattisgarh also notified such a scheme in August 2011 and provided for compensation up to Rs 1 lakh. But Section 357A needs to be implemented in letter and in spirit. Otherwise, the SC might be forced to intervene and fix the amount of compensation, as it did for the victims of acid attack in a recent verdict.

The recent amendments in criminal law, prompted by the Delhi gangrape, do attempt to provide a measure of redress for the victim. The newly added Section 357A provides that the compensation awarded under this section shall be in addition to that awarded under the punitive section of rape, that is, Section 376 of the IPC. The amended law also directs hospitals, both private and public, to provide

The criminal justice system is now progressing towards reparative justice. The victims of rape require psychological counselling and rehabilitation to reduce secondary victimisation at the hands of society. The police must be sympathetic in assessing the victims' requirements.

free and timely first aid to the victim.

The criminal justice system is now progressing towards reparative justice. The victims of rape require psychological counselling and rehabilitation to reduce secondary victimisation at the hands of society. The police must be sympathetic in assessing the victims' requirements. Compensation is the right of the victim. Not only should the amount of compensation be reasonable, but the procedure for awarding such compensation must also be simple and timebound. Victims should not have to run from pillar to post to realise their rights.

□ □ □

The author is additional director general of police in Chhattisgarh express@expressindia.com

(Courtesy :- Indian Express)



No exits from these tunnels of death

● AGRIMA BHASIN

Deep-rooted caste biases and the brazen disregard by civic authorities of court judgments are the main reason for the frequent deaths of sewerage workers across the country

Earlier this month, a group of men set forth to unblock a drain sewer in the basement of the Indira Gandhi National Centre for the Arts (IGNCA) in Delhi. Two of the men, Ashok and Chhotu, entered the sewer but did not return. The other two, Rajeshwar and Satish, went in to look for their colleagues. Three of the four men, assaulted by the poisonous rush of gases, lost their lives on the spot. Chhotu survived and was pulled out. Ashok, Rajeshwar and Satish became a statistic alongside other sewage workers like Robert and Shekhar who also died of asphyxiation while unblocking a sewage tank in a private hotel in Chennai in April this year.

The resident electrician at IGNCA had roped in housekeeping staff to unblock the sewer on a Sunday afternoon on the cheap. The four men, all Dalits, were not provided with safety gear. They entered the sewer with only a handkerchief for protection. They were hit by the foul-smelling methane gas and delayed in their escape by the thick muck that lines the sewer. That three out of the four were employees of the IGNCA is a fact that officials-in-charge now unashamedly deny.

The officials in the administrative and

engineering departments at IGNCA, as well as the contractor, all of whom sanctioned the work, are in stubborn denial of their failure to comply with safety requirements.

No safety gear

The deaths of the three men are yet another reminder of the frightening frequency with which lives have been similarly extinguished across sewers in Uttar Pradesh, Andhra Pradesh, Karnataka, Gujarat and Tamil Nadu in recent years.

Are sewage workers asked to enter drains and sewers only as a last resort? Are suction machines deployed at all or do they fail each time? Why were workers not given safety gear (oxygen mask, goggles, gumboots, helmet)? Were their families awarded adequate compensation? These questions remain unanswered as the actions of the offenders across the country stand in violation of the July 2011 judgment of the Supreme Court, which noted that sewage workers, by being forced to enter drains without safety equipment, have been deprived of their fundamental rights to equality, life and liberty. It criticised governments for their insensitivity towards the plight of sewage workers and



directed civic bodies to ensure the safety and security of workers, in addition to paying higher compensation to the families of the deceased.

Sewerage workers, traditionally Valmiki Dalits, employed by civic bodies such as the Water Board, Public Works Department (PWD), Municipal Corporations, have, for generations, relentlessly toiled, continually risking their health and life to ensure upkeep of the sewerage system. But save for hurt, exploitation and untouchability, they have received little in return. Despite proactive orders of the Gujarat High Court (2006) and Madras High Court (2008), the implementation of the directives remains unrealised, in the wake of frequent deaths.

Health hazards

The task of inspecting, repairing, unblocking and maintaining sewers exposes workers to the sordid, sewage gunk that is generated in our homes, factories, hotels, hospitals and workplaces each day an odorous mix of human excrement, food waste, plastic, used sanitary materials, and industrial effluents. This rotting refuse ferments to produce noxious gases, commonly methane, hydrogen sulphide and nitrogen oxide, which routinely threaten the workers' lives besides causing respiratory, gastric, spinal and skin diseases.

To guard themselves against exposure to these gases, most workers express a strong preference for protective gear such as full body suits. However, maintaining that the "unlettered" workers fail to appreciate such technology, most Water Board officials approach the issue of workers' safety with



"It is not our death that we fear but the fate of our families after our death." This is what Delhi's Jal Board branch workers say - every one of them. This is the workers' deepest insecurity, compounded by the complete absence or wretched provisioning of social security support.



unabashed negligence. Some alcohol, the workers say, is the first buffer against this gaseous attack, for without it, it is unthinkable to survive the nauseating odour. Often what passes off as safety equipment is an oxygen cylinder, the weight of which, not cushioned by a body suit, is too burdensome and inconvenient for workers to work with.

"It is not our death that we fear but the fate of our families after our death." This is what Delhi's Jal Board branch workers say every one of them. This is the workers' deepest insecurity, compounded by the complete absence or wretched provisioning of social security support.



The abrupt end to the lives of sewage workers in India is often not death by accident but a consequence of brazen indifference, rooted in caste inequalities and carelessly practised by civic authorities and private and public institutions at large.



Rehabilitation Bill

The Employment of Manual Scavengers and Construction of Dry Latrines (Prohibition) Act, 1993, that declared manual scavenging unconstitutional did not address these insecurities as it failed to bring sewage workers within its ambit. In a welcome departure, the United Progressive Alliance's Prohibition of Employment as Manual Scavengers and their Rehabilitation Bill, 2012 recognises the group of persons traditionally forced to clean septic tanks, sewers and open drains, as "manual scavengers." It also promises an economic "rehabilitation package" for workers, while failing to specify the safety gear that should be provided. It is silent too on worker health and safety regulations that should be made binding.

There is a possibility that the recognition of sewage workers as "manual scavengers" may translate into mere lip service, insofar as it collates a practice (of cleaning dry toilets

and railway tracks) that can be wholly eradicated, with a hazardous occupation (of cleaning sewers and septic tanks), where investment in superior technology can prevent the worker from entering the sewer drain or manhole in the first place. Eventually, the only way forward is to attack our caste biases, implement the law with rigour and push for a strong political commitment to remedy a historical wrong.

The 1993 Act has rarely been invoked and not a single offender has been prosecuted till date. Not pinning responsibility on erring authorities (be it the government-run IGNCAs or a private hotel in Chennai) legitimises the prejudicial treatment that is meted out to Dalit individuals whose labour we exploit.

The abrupt end to the lives of sewage workers in India is often not death by accident but a consequence of brazen indifference, rooted in caste inequalities and carelessly practised by civic authorities and private and public institutions at large.

It is a yearly drill civic authorities across cities dismally fail the "monsoon test" and then rely on their Dalit workforce for its back-breaking, cheap labour to offset the civic shame. It reflects an entrenched system of caste-exploitation, the gains of which are reaped not just by a multitude of civic bodies but also by our resident welfare associations, schools, universities, hotels and hospitals, art and entertainment complexes and private offices. Our own insensitivity implicates us in the ongoing indignities and injustices Dalit workers experience.



(Writer is at the Centre for Equity Studies, a New-Delhi based policy think-tank.)

(Courtesy :- Indian Express)



Link TB control programme with food security

● AARTI DHAR



‘Nutrition has been identified as one of the factors impacting treatment outcomes’

H | ealth activists have suggested linking the Revised National Tuberculosis Control Programme (RNTCP) with the food security programme to be launched shortly for better treatment outcomes.

Good nutrition has a broader positive impact on health and the RNTCP should have appropriate linkages with nutrition and food security programmes, including the Right to Food. Nutrition has been identified as one of the factors impacting treatment outcomes, the activists have said.

The report “Best Practices in PMDT in India” also warns that despite TB being a notifiable disease in India since May 2010, all private healthcare providers treating TB are not notifying it still. This information is critical to inform the programme and help improve its response to TB care and control. All professional associations related to TB care and control, law enforcing agencies, media among others should be actively engaged.

“Engaging pharmacies in Directly Observed Treatment Shortcourse (DOTS) is a positive way ahead for India’s programme and must be expedited with all required safeguards and cautions. Irrational use of anti-TB drugs needs to be regulated. Uninterrupted supplies of standard quality-assured anti-TB drugs should be made available to private and public sector where TB is being treated,” it says.

Despite challenges of health systems and the biggest TB disease burden globally, India has certainly come a long way in its response to providing access to standard WHO recommended anti-TB treatment through DOTS to more than 14.2 million (1.42 crore) people across the country.

“However TB continues to remain one of the key public health priorities in India. Drug-resistant TB is one of the major concerns and India is on track to providing universal access to quality diagnostics and treatment services for all patients with drug-resistant TB in next five years. Currently modern, evidence-based and standard laboratories and diagnostic facilities, and quality assured treatment regimens for drug-resistant TB exist in entire country with every State covered.”

Citizen News Service (CNS) with support from Lilly MDR TB Partnership visited key 14 PMDT sites in India and reviewed to what extent the PMDT guidelines of India are in place on four key themes: counselling, infection control, diagnostics and laboratory services, and treatment and care services.

“India has been scaling PMDT across the country alongside improving DOTS with nearly every State having quality assured standard intermediate reference laboratory [IRL] for early and confirmed diagnosis of drug-resistant TB with modern WHO- and RNTCP- approved technologies and standard treatment and care facilities



The study found that awareness and practice of infection control measures in home settings were inadequate, and that is perhaps why the study found why in many cases more than one family member was infected with drug-resistant TB.

integrated in existing healthcare facilities” said Bobby Ramakant. This publication is a five-part series on “Best Practices in Programmatic Management of Drug-resistant Tuberculosis [PMDT] in India” that CNS did with support from Lilly MDR TB Partnership in India during January and June this year.

CNS selected PMDT sites that had significant number of people seeking treatment and care for drug-resistant TB, and were functional for the past few years. It selected national reference laboratories (NRLs) and State’s intermediate reference laboratories with a private diagnostic laboratory of repute.

Innovative approaches such as home-

based care models or other centres that were doing inspiring work to enhance positive outcomes of PMDT sites were also included. The study covered 14 sites in six cities and conducted over 200 key informant interviews. Also included in the study are those taking treatment for MDR-TB and those cured of the disease.

The study found that awareness and practice of infection control measures in home settings were inadequate, and that is perhaps why the study found why in many cases more than one family member was infected with drug-resistant TB.

“Mechanisms to monitor and help strengthen infection control in community and home settings will help pronounce the gains of PMDT. Patients, especially women who often spend most of their time indoors, should also be encouraged to expose themselves more to sunshine and fresh air,” it said.

Special infection control education to protect transmission of all forms of TB (and other infections) to children should be provided to patients and all family members. Similarly, messaging should also be incorporated in other health education campaigns for broader gains like discouraging patients from bringing children to hospitals or drug dispensing sites, and family and family members should be sensitised to support such infection control measures,” it said.

Pointing out that stigma was a barrier to access existing TB care services, it said that stigma among those seeking care must be effectively addressed through myriad channels and innovative evidence-based mechanism.



(Courtesy :- The Hindu)



Can we let this mass murderer run free?

● K. SRINATH REDDY, ● R. K. PACHAURI, ● SHYAM SARAN

Benefits of a tobacco-free society go beyond better health to better environment, food security and poverty reduction

The World Health Organisation (WHO) estimates that tobacco killed 100 million persons in the 20th century, more than the two world wars combined. Even more alarming is the projected tobacco related death toll for the 21st century. A billion persons are likely to die from tobacco related diseases in this century, according to WHO. About half of these deaths will occur in middle age and 80 per cent of global deaths from tobacco will be in the low and middle income countries. Currently, over six million die each year due to tobacco use.

India is expected to have the highest rate of rise in tobacco related deaths, over the next three decades. At present, a million lives are lost annually due to smoking. Since deaths due to tobacco chewing and other non-smoking forms of consumption as well as the lives claimed by passive smoking have not been well quantified, the total count of tobacco related deaths will be more than a million per year.

Recent surveys reveal that 35 per cent of Indians over 15 years of age consume tobacco. While the number of men with the tobacco habit has remained around 48-50 per cent over the last decade, the number of women consumers has doubled from 10 per cent to 20 per cent. In the age group of 13-15 years, 14.6 per cent of children regularly consume tobacco. In the schools of Delhi and Chennai, class six students were observed

to be consuming tobacco more frequently than those in class eight, suggesting that the age of initiation is becoming younger. The gap between boys and girls is narrowing. Oral tobacco consumption is especially high among women and girls. Across the country, bidis are smoked more than cigarettes but oral tobacco products now top them all.

The list of diseases linked to tobacco grows by the day. While heart attacks and cancers lead the list, lung diseases, gangrene, cataracts, impotence, infertility and still births are known to result from tobacco use. Over the past two decades, evidence has accumulated to show that smokers are more likely to develop and die due to tuberculosis. Tobacco users are also more likely to develop diabetes, because of acquired insulin resistance.

Tobacco is not merely a health hazard. It is also a threat to the environment. 'Curing' of raw tobacco leaf requires burning of wood fuel, leading to deforestation. Paper used for packaging adds to that. Tobacco cultivation is water intensive, uses a high volume of pesticides and causes soil erosion. With millions of undernourished children and hungry people across the world, should the world be wasting four million hectares of arable land on tobacco instead of growing food crops?

Tobacco is linked to poverty, both as cause and consequence. Across the world,



Tobacco is a marketed malady and an advertised addiction. Court cases and Senate hearings in the U.S. have shown how the tobacco industry has cynically suppressed or denied evidence of health harm or addiction. The industry has consistently opposed or evaded regulation and continues to devise new means of maximising private profit unmindful of the horrendous effects of tobacco on human welfare.



India included, poor and less educated persons consume tobacco more frequently than the affluent or well educated. It also leads to or aggravates poverty, through death or disability of wage earners in a family. It diverts household income from food, education, health care and other needs. While it offers employment in agriculture and industry and raises revenue for the government, health care costs of tobacco related diseases exceed the economic returns from tobacco, according to studies commissioned by the Indian Council of Medical Research. It is this

link to poverty that made the World Bank alter its position on tobacco and call for 'reversing the epidemic'.

Curbing supply

Tobacco is a marketed malady and an advertised addiction. Court cases and Senate hearings in the U.S. have shown how the tobacco industry has cynically suppressed or denied evidence of health harm or addiction. The industry has consistently opposed or evaded regulation and continues to devise new means of maximising private profit unmindful of the horrendous effects of tobacco on human welfare.

There is no alternative to the elimination of tobacco as a product for human consumption in any form. Countries across a wide spectrum of development have shown how effective regulatory measures can reduce tobacco consumption and its health burdens — Australia, New Zealand, Ireland, Canada, Uruguay, Brazil, Thailand and Bhutan are among the outstanding examples. However, this global threat now calls for a concerted global thrust to lift the dark shadow of tobacco from the 21st century.

As the world awaits the adoption of Sustainable Development Goals (SDGs) in 2015, we must recognise tobacco as a grave threat to humanity's aspirations for progress and wellbeing. Whether we are concerned about health, environment, food security, water security or poverty reduction, we have to work for a tobacco free society. Otherwise, tobacco will frustrate all prospects of sustainable development.

Treaty in place

In 2003, the World Health Assembly



adopted the world's first public health treaty negotiated under the auspices of WHO. The Framework Convention for Tobacco Control (FCTC) has now been ratified by 176 countries. India, which led from the front during the FCTC negotiations, enacted a comprehensive legislation for tobacco control in April 2003. Regulatory measures prescribed under the law include a ban on smoking in public places and indoor work places, prohibition of advertising and promotion of tobacco products, pictorial warnings on tobacco packs, ban on sale to minors and regulation of movies to counter the effects of scenes depicting tobacco use. The recent ban on 'gutkha' is a major step forward.

However, much needs to be done to strengthen enforcement of those measures and to effectively communicate the dangers of tobacco to people. The benefits of quitting the habit are many and must be made known to tobacco users, who must be assisted in giving up the deadly habit through community

based cessation services. Both WHO and World Bank advocate raising taxes, to increase tobacco product price, as the most effective intervention to reduce tobacco consumption. India must use this path to discourage tobacco consumption and raise revenue for developmental activities, including provision of alternative livelihoods to persons engaged in tobacco farming and manufacture. These measures need to be accompanied by a sustained awareness campaign, using both electronic and social media, to discourage the use of tobacco in any form. Such a campaign must particularly target the young generation, in schools and in colleges. Associating celebrities with this campaign as role models may be an effective means of getting the message across: "Tobacco kills".



(Dr. R.K. Pachauri is director, TERI, Dr. K. Srinath Reddy is president, Public Health Foundation of India, and Shyam Saran is a former Foreign Secretary and currently chairman, National Security Advisory Board.)

(Courtesy :- The Hindu)



"The whole history of the world is summed up in the fact that, when nations are strong, they are not always just, and when they wish to be just, they are no longer strong."

-Winston Churchill





ORGANIC FARMING THE ONLY OPTION

● Farooq Qureshi

Each culture, each region down the ages has come to its own set of agricultural practices based on their understanding of nature and what was handed down to them by their ancestors. In India for example, the 'Baiga' tribals in Mandla district of the State practice 'jhum' cultivation, which eschews tilling, writes

Extensive use of chemicals in agriculture has taken a serious toll on environment and human health. Waking to its ill-effects, people are gradually moving towards organic farming that has emerged as a sustainable option to tackle the problems caused by chemicals. The Charkha Development Communication Network (CDCN), which works in rural areas of the State, feels that going the 'organic' way is not just one option, but the only option today that celebrates and upholds the laws of nature which human beings need. It works to educate the farming community to adopt organic means of farming.

CDCN organised a visit of a group of journalism students to a small organic farm near the State capital to facilitate first hand experience of organic farming practices.

As the students entered the farm they saw fruit trees growing in the fields, something contrary to 'standard' agriculture practice as it is understood that the shade would hamper full growth of the crop. Besides, the tree will also fight for space on the ground.

However, they saw wheat crops gently swaying in the breeze and a number of trees like guava, lemon, and a local variant of 'babool' rising up above these crops. The students were puzzled if there was a method

in the apparent madness.

Raju, the young man who looks after the farm smiled sensing the doubt in student's minds and went on to explain the logic behind it. He explained that the spread of roots nourished the soil, which is then drawn up by the wheat crop. He said that even if some of the crop saplings grow under shade it does not negate the enormous benefit it receives from the enriched soil.

It struck the group in an instant that this is what is actually meant by 'organic farming', a term which has become fashionable but is little understood apart from a negation of 'chemicals' in cultivation, to protect it from vagaries of climate or virulent pests. It actually goes much beyond that and draws on any aspect of the natural phenomenon to aid the cultivation process.

It befriends the earth and the natural cycles and tries to find sync with it rather than aside from it. For instance, standing water after heavy rainfall is normally drained from the fields in the belief that this would rot the crops. But under organic farming water is seen as beneficial as it retains the moisture in soil and air apart from aiding the natural process to induce rain.

Besides, the standing water aids the farm



in yet another way. The fallen twigs, leaves and plants which die in the field gradually turn into manure due to presence of the water. This also becomes an excellent breeding ground for a variety of life forms, insects, worms, turtles, indeed an ecosystem in itself!

All these have a role to play. With their movements through the soil, they actually 'till' the soil creating channels or 'perforations' right to the tips of the roots, This strengthens the soil, making it aerated and the roots become robust. Regeneration is the key principle.

The group realized how far the ordinary mortals are removed from nature and how little we understand it. The common practice is to till and water the field. What does it achieve? The soil becomes slushy preventing water from percolating down, The groundwater level without getting charged gets depleted. On the ground, the slush gets washed away with excess water, which in essence wipes out all the natural nutrients of the soil.

Each culture, each region down the ages has come to its own set of agricultural practices based on their understanding of nature and what was handed down to them by their ancestor, In India for example, the 'Baiga' tribals in Mandla district of the state practice 'jhoom' cultivation, which eschews tilling!

The group also noticed that the crop-sown area was limited and it was right. On a 12 acre farm, only one acre was dedicated to wheat, the rest being taken up by a thick growth of Subbul (Australian Agesia) a tree whose branches and leaves are used as fodder.

As the group entered the 'forest', it noticed village women with loads of subbul branches



It struck the group in an instant that this is what is actually meant by 'organic farming', a term which has become fashionable but is little understood apart from a negation of 'chemicals' in cultivation, to protect it from vagaries of climate or virulent pests. It actually goes much beyond that and draws on any aspect of the natural phenomenon to aid the cultivation process.



and twigs precariously perched on their heads while the men were atop trees sifting and cutting the foliage.

Raju explained, "We cultivate our lands based on our requirement and not on the market's demands. We grow wheat in the winter, maize and 'mooding' is summer and paddy during monsoons! Besides we get plentiful vegetables and fruit. which supplement the dietary needs of our family.

Raju went on to explain how the economics of the farm works to benefit the community and said, "The 'Subbul' forest is



The group marveled at the optimum use of available resources for creating not only a good life in the immediate sense but having the wisdom and mechanism to sustain it for the years ahead.



not just ideal for grazing cattle but for collecting firewood which we sell in the local market, worth one lakh rupees per year!"

The group marveled at the optimum use of available resources for creating not only a good life in the immediate sense but having the wisdom and mechanism to sustain it for the years ahead. They had a rich nourished soil, sufficient food grains, and a good yield of vegetables and fruit and in the bargain, a healthy cash flow to meet their other needs. It was really a dexterous use of available resources!

When the group ask itself what they have learnt, the answer comes clear, There is a need to see the entire world of agriculture from the prism of nature's processes and not from the quantified needs of the communities.

Unless we learn to temper the needs of cultivation, of fodder, of fuel, in fact the entire gamut of items we demand from nature, it will give up on us. We need to help it to help us, strengthen its processes for its bounty to be showered on us, not for the present alone but for generations to come.

Organic farming in India

Before the Green Revolution, it was feared that millions of poor Indians would die of hunger in the mid 1970s. However, the Green Revolution, within a few years, showed its impact. The country, which greatly relied on imports for its food supply, reduced its imports every passing year. In 1990s, India had surplus food grains and once again became an exporter of food grains.

As time went by, extensive dependence on chemical farming has shown its darker side. The land is losing its fertility and is demanding larger quantities of fertilizers to be used. Pests are becoming immune, requiring the farmers to use stronger and costlier pesticides. Due to increased cost of farming, farmers are falling into the trap of money lenders, who are exploiting them no end, and forcing many to commit suicide.

Both consumers and farmers are now gradually shifting back to organic farming in India. It is believed by many that organic farming is healthier.

Though the health benefits of organic food are yet to be proved, consumers are willing to pay higher premium for the same. Many farmers in India are shifting to organic farming due to the domestic and international demand for organic food. Organic farming, therefore, provides a better alternative to chemical farming.

According to the International Fund for Agriculture and Development (IFAD), about 2.5 million hectares of land was under organic farming in India in 2004. Further there are over 15000 certified organic farms in India. India, therefore is one of the most important suppliers of organic food to the developed nations. No doubt, the organic movement has again started in India.



(Courtesy :- The Pioneer)



Handle waste with seriousness

● KOTA SRIRAJ

Waste produced in India has a huge potential to generate clean and sustainable energy if it is recycled in a proper manner. The Government must Spread awareness on the issue

B | urgeoning population and overburdened municipal infrastructure are ensuring that the top cities of India are very productive in one are a - waste generation in epic proportions. A miserable waste management strategy and clueless Government translates to overflowing land fill sites with more unsorted waste getting added every hour.

The total municipal solid waste generated in urban India is 68.8 million tonnes per year or 188,500 tonnes per day. If the trend continues. urban India will generate 160.5 million tpy (440,000 tpd) by 2041. This calls for an evolved waste management discipline and sustainable waste-to-energy generation technology.

Delhi alone generates 8,500 tonnes of waste daily and has three major landfill sites that are overflowing. But before a fourth landfill is created to shoulder the need, we need to contemplate as to why we are converting our cities into garbage dumps when projects world over are ensuring successful waste to energy conversion and doing away with the need to add more landfill sites.

In 1999, Singapore was sending 0.76 million tonnes of waste to its landfill site in a year and incinerating 2.04 million tonnes. In

2011, only 0.2 million tonnes was sent to the site while 2.66 million tonnes was sent for incineration to its four waste-to-energy plants. The plants process around 7,600 tonnes of waste daily and produce more than 40 MW of power. With about 50 per cent of the waste recycled, waste management becomes easier for the authorities.

The problem in India lies in the lack of research and insensitive project implementation that does not account for social impact. The waste-to-energy plant at Okhla, in Delhi is an apt example with the local residents having filed various court cases, citing pollution being caused and toxins released into the atmosphere due to waste incineration to generate electricity.

How and why the local residents were not consulted prior to project implementation is a mystery and all of this for generation of 16 MV of power. With two more WTE plants coming up, the total waste that can be incinerated per day will be 7,500 tonnes.

Another problem with waste-to-energy technology currently is due to the low calorific value, as Indian waste is never segregated, it is wet and often mixed with hazardous material and as a result this waste does not burn well at all. The technology may be of cutting edge but if the raw waste feed is



Waste pickers should also be employed at material recovery facilities to increase the percentage of recycling. The recyclables so harvested can be processed for a longer lifespan.



The remaining solid waste post segregation can be sent for incineration. Incineration reduces the volume of solid waste by about 90 per cent and produces steam that runs turbine generators to generate electricity. The incinerated ash and other non-incinerable wastes can be forwarded to landfill sites or ash from WTE facilities can be used to make bricks as well.

For the success of any public initiative, the Government should ensure that proper awareness is generated pertaining to the project and the technology behind it. In many Indian cities a municipal truck openly carrying waste that is spilling over and foul smell emanating is a common sight, this despite specific orders to keep the vehicles covered.

The Government should provide advanced waste collection and transport vehicles that deliver incinerable solid waste to the plants and to prevent odours from escaping into the environment, the air in the waste chamber can be kept below atmospheric pressure.

An effective waste management strategy will go a long way in reducing diseases and improvement in the quality of life for urban Indians, and avoid environmental pollution. The Government and local authorities should work with their partners to promote source separation and achieve higher percentages of recycling.

In addition, the waste-to-energy industry should exhibit self-responsibility in emissions control with constant emissions monitoring, reporting and feedback the results into a loop of self improvement. This will redefine how clean energy is produced from waste in India in a sustainable and socially responsible manner.



(Courtesy :- The Pioneer)

unsorted, the desired output is never achieved. Government and partnering NGOs can promote informal recycling and attempt waste segregation at the point of origin by training and employing waste pickers to conduct door-to-door collection of wastes and then allowing them to sell the recyclables they collected.

Waste pickers should also be employed at material recovery facilities to increase the percentage of recycling. The recyclables so harvested can be processed for a longer lifespan. As a part of this effort the Government can also encourage and incentivise single households, restaurants, food courts and other sources of separated organic waste to employ small scale bio-metha-nation and use the biogas for cooking purposes.



Clean energy can light up lives

● SANDIP VERMA



Biomass cookstoves and solar lighting improve the health of women and are creating business models that empower them



Around the world three billion people have no access to modern cooking fuels. They depend mostly on direct burning of solid biomass for cooking and heating. The smoke from these rudimentary stoves causes some four million deaths annually, destroys millions of tonnes of crops and leads to global warming and large-scale regional climate change.

In India, 400 million people, of which 90 per cent are women, are exposed to indoor air pollution from inefficient cookstoves. This results in respiratory, pulmonary and vision problems.

In addition, inefficient cookstoves mean that women spend five to eight hours per day on cooking activities, 20 per cent of that time collecting fuel. This is time that could be spent on educational or other activities. Searching for fuel also puts women and children at risk of sexual violence.

The government of India is taking action. The National Programme on Improved Cookstoves has been successful at the State level. The National Biomass Cookstoves Initiative (NBCI) is providing improved cookstoves, which directly help the weakest and most vulnerable sections of society.

But extending the take-up of new cookstoves involves changing perceptions and practices around some of the most fundamental activities of a household. To make such changes sustainable, local conditions need to be taken into account. The stoves need to be affordable and the households need to see tangible benefits.

Spreading the light

The U.K.'s Department for International Development is working with The Energy and Resources Institute (TERI) to support pilot programmes to make available more effective and affordable clean cookstoves and solar home lighting products to meet the energy needs of poor households in India.

TERI aims to have improved cookstoves delivered and in use by 100,000 households by 2015 and for 400,000 households to have adopted solar lighting systems. As a result, 2.5 million people will benefit from access to modern, clean energy for cooking or lighting.

Sustainable practices

This is not about handouts, but about developing sustainable business models that empower women and provide clean energy and lighting. The project actively involves women in designing the new cookstoves and



developing sustainable business models that include the women as economic actors in the supply chain.

TERI has incubated women's organisations as Energy Enterprises which provide after-sales services for the cookstoves. It also helps women to start up businesses by supporting them in opening bank accounts, training them in social marketing and technical servicing.

Similarly, TERI's Lighting a Billion Lives programme is making a difference. It supports the establishment of micro solar enterprises to provide high-quality and cost effective solar lamps in un-electrified or poorly electrified villages. Importantly, it gives priority to women when selecting village level entrepreneurs.

In Uttar Pradesh, more than 175 solar charging stations are now operated by women entrepreneurs. 100 are operated and

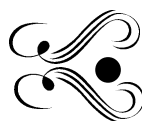
maintained by women self-help groups, while 75 are operated by marginalised sections of society such as handicapped women, widows and Dalits. In Bihar, TERI has created energy enterprises to extend after-sales service to more than 1,000 women self-help groups.

We know that improved cookstoves help reduce indoor pollution and harmful emissions, and help women and children to lead better lives. We also know that when a woman generates her own income she re-invests 90 per cent of it in her family and community. This is good for the local community, and for the national economy. I am delighted that the U.K. and India are working together on this important agenda.



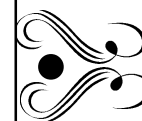
(Baroness Verma is Parliamentary Under Secretary of State for Department of Energy & Climate Change, U.K.)

(Courtesy :- The Hindu)



“To believe that what has not occurred in history will not occur at all, is to argue disbelief in the dignity of man.”

-Mahatma Gandhi





A task only half finished

● APARNA VISWANATHAN

The fact that there is still no verdict in the Delhi rape trial is a sobering reminder that the Criminal Law Amendment Act 2013 is insufficient reform

Over eight months have passed since the horrific events of December 16, 2012, yet the wave of rapes still rage across the nation. The spring and summer of 2013 were marred by barbaric events such as the rape of five-year-old girls in Delhi and Gurgaon, the acid attack on a young woman getting off a train in Mumbai, the gruesome rape and murder of a 20-year-old college girl in Kolkata, and, most recently, the gang rape of a photo journalist in Mumbai as well as countless other incidents. Despite the recurring frequency of these crimes, the public discourse on law reform has come to a halt following the passage of the Criminal Law (Amendment) Act 2013 in April. While the Act certainly introduced long, overdue changes in the law, it is but a first step in the long journey to ending violence against women in India through criminal law, police reforms and curricular reforms intended to change the mentality of future generations. The necessity of further reforms to criminal procedure is glaringly evident from the fact that, although six fast track courts were set up, the verdict in the Delhi rape trial still has not been passed even after eight months of litigation.

Overdue changes

The Criminal Law (Amendment) Act 2013 (“Act”) took the historic step of amending the Indian Penal Code (IPC) to provide for the new offences of rape causing death or a vegetative state, sexual intercourse by a person in authority, gang rape and repeat offences. Importantly, the Act also introduced several other new offences such as causing grievous hurt through acid attacks, sexual harassment, use of criminal force on a woman with intent to disrobe, voyeurism and stalking. Importantly, the Act further amended the IPC to criminalise the failure of a public servant to obey directions under law. It has also made the non-treatment of a rape victim by any public or private hospital an offence. While these amendments to the IPC constitute a major legislative stride forward, corresponding steps forward have not been taken in the amendment of criminal procedure.

The Act amended the Code of Criminal Procedure (CrPC) to provide for a woman officer to record evidence from a woman against whom certain offences have been committed. If the victim of such offences has



The starting point is of course the registration of the FIR itself. The courts are divided over whether the police have an obligation or not by law to investigate allegations of rape before registering an FIR. If a police investigation has to take place before the registration of an FIR, delays will inevitably occur and the failure to register FIRs in rape cases will continue.



been mentally or physically disabled, temporarily or permanently, then the woman officer must record the evidence at the victim's residence or the victim's place of choice. These requirements apply to offences such as causing voluntarily, grievous hurt by the use of acid, sexual harassment, assault or use of criminal force against a woman with intent to disrobe, voyeurism, stalking, rape, gang rape, sexual intercourse by a person in authority, and a word, gesture or act intended to insult the modesty of a woman. The CrPC was further amended to provide for a court to ensure that when the evidence of a victim of rape below 18 years has to be recorded, the

accused does not confront the victim. However, many procedural issues critical to making the criminal justice system functional in the case of rape and serving as a deterrent against further crime have not been addressed by the Act.

Areas to be looked into

The starting point is of course the registration of the FIR itself. The courts are divided over whether the police have an obligation or not by law to investigate allegations of rape before registering an FIR. If a police investigation has to take place before the registration of an FIR, delays will inevitably occur and the failure to register FIRs in rape cases will continue. Moreover, the Crime and Criminal Tracking Network and Systems (CCTNS), an ambitious Rs.2,000 crore project of the Home Ministry, which would enable at least the e-filing of FIRs, is expected to be implemented only in 2015.

The second procedural issue is fast track courts. Section 309 of the Criminal Procedure Code (CrPC), as amended by the Act, provides that the trial of offences under Section 376 (rape) and Sections 376A-D (covering punishment for causing death or resulting in persistent vegetative state of the victim, sexual intercourse by husband upon his wife during separation, sexual intercourse by a person in authority and gang rape) must be completed within two months from the date of filing the charge sheet. However, the Delhi rape case, prosecuted in a fast track court, has already taken over eight months. Therefore, procedural rules must be examined including the grounds for an order of in camera proceedings. They are usually ordered only where a matter of national



security is involved or a party asserts that communications are privileged. In camera proceedings are not ordered on the grounds that the accused's safety is at risk as in the Delhi case. Indeed, the court's order of in camera proceedings in this case has resulted in it being secluded from media attention, thereby reducing public pressure for further reforms.

Samaritans & jurisdiction

A third issue is the protection of good Samaritans. The CrPC must be amended to provide that members of the public who act as good Samaritans should not be treated as wrongdoers and unnecessarily questioned or harassed by the police. The current situation in which bystanders do not help victims of crime reflects a sad state of societal affairs and must be addressed.

While the Act has made limited changes to criminal procedure, the police have been left out of legislative reforms altogether. The only reforms were those announced by the then Delhi Police Commissioner, Neeraj Kumar, on January 18, 2013, including that Zero First Information Reports (FIR) may be registered on the basis of a woman's statement at any police station irrespective of jurisdiction. Jurisdiction is a very important issue as, in the Delhi case, the victim's friend stated that the police wasted 30 minutes arguing over jurisdiction, although the victim and her friend were lying on the road for two hours. The police chief also announced a series of other measures such as the recruitment of 418 women sub-inspectors and 2,088 women constables, PCR vans to be deployed outside women's colleges, provision for women to call '100' to seek



Despite the clear need for reform of police handling of rape cases, the Model Police Act of 2006 drafted by the Police Act Drafting Committee (PADC) constituted by the Ministry of Home Affairs in September 2005, and chaired by Mr. Soli Sorabjee, is in cold storage.



assistance to be given a lift home at night by a PCR van, and 24-hour police cover for areas around entertainment hubs with increased security between 8 p.m. and 1 a.m. Despite these reforms, in the succeeding months, police actions in subsequent rape cases have caused much alarm. In the case of the rape of a five-year-old child, the police were accused of offering a bribe of Rs. 2,000 to the victim's family to refrain from filing a case. Police officers have also been filmed on video beating women of all ages because they had the audacity to protest a rape.

Model Police Act

Despite the clear need for reform of police handling of rape cases, the Model Police Act



Third was the principle of accountability. The police Act proposed introducing criminal penalties for the most common defaults of the police such as non-registration of FIRs, unlawful arrest, detention, search or seizure.

of 2006 drafted by the Police Act Drafting Committee (PADC) constituted by the Ministry of Home Affairs in September 2005, and chaired by Mr. Soli Sorabjee, is in cold storage. The Model Act, which was intended to replace the archaic Indian Police Act of 1861, was drafted with the purpose of not only meeting the challenges of policing but also fulfilling the democratic aspirations of a modern society. The PADC envisioned a modern police force which was responsive to the needs of the people while being accountable to the rule of law. A few of the key concepts underlying the police Act were: 1) functional autonomy; 2) encouraging professionalism; 3) accountability; and, presciently, 4) jurisdiction.

First, functional autonomy was viewed as a means of removing the nexus between police and politicians who treat the police as their personal security service. It proposed the establishment of a panel to receive complaints from police officers of pressure

from higher officials to commit illegal or unconstitutional acts. The PADC felt that the law should be the master of the police, not politicians. A fixed tenure of two years was suggested to avoid transfers arbitrarily.

Second, the Model Act focussed on encouraging professionalism. The PADC recommended abolition of the rank of constable and replacing it with a primary rank of Grade II civil police officer. However, a recruit can attain this officer rank only after undergoing a three-year training course as a stipendiary cadet, culminating in a bachelor's degree in police studies. As a result, even the lowest level of the police force will have a bachelor's degree.

Third was the principle of accountability. The police Act proposed introducing criminal penalties for the most common defaults of the police such as non-registration of FIRs, unlawful arrest, detention, search or seizure.

Fourth, and most presciently, was the issue of jurisdiction. Underpinning the Model Police Act is the notion that police officers should be duty-bound to assist victims of sexual offences irrespective of the crime's jurisdiction. As the Model Police Act was never implemented, it took the tragic Delhi case for reforms regarding jurisdiction to be announced. In short, while the passage of the Criminal Law (Amendment) Act 2013 is a milestone in criminal law reform in rape cases, the creation of offences is not sufficient. Instead, the punishment of those committing these offences through the police and the criminal justice system is critical in providing effective deterrence against future crimes.

□ □ □

(Aparna Viswanathan is a lawyer.)

(Courtesy :- The Hindu)



This vaccine needs a booster shot

● Naveen Tahacker

While we should continue to be vigilant to ensure the safety of our children, it is equally important to move forward and embrace newer technologies in our health system that can help save lives, writers.

The issue of childhood diseases has long eluded public consciousness - which is a grave injustice to India's children. Every year, the world loses about seven million children less than five years of age. Nearly one-fourth of these deaths (24 per cent) are from India. Tragically, a majority of these deaths occur from easily preventable diseases, such as pneumonia and diarrhoea. Pneumonia is one of the leading causes of death of children aged under five in the country. The disease claimed over 3,97,000 lives in 2010 alone.

What is especially tragic is that pneumonia can be easily averted and treated with existing child-survival interventions. Precautionary measures such as frequent washing of hands and general cleanliness help reduce the transmission of micro-organisms and exclusive breast-feeding for the first six months is vital to ensure that the child gets adequate nutrition and builds natural immunity against infections. Vaccines are particularly important preventive strategies in populations that do not have access to care and treatment. A comprehensive approach to the prevention of pneumonia, including

access to new and available vaccines, is needed to combat this deadly disease.

The National Technical Advisory Group on Immunisation, in 2008, recommended that vaccines for Hib (Haemophilus influenza type B), the pathogen that causes pneumonia and meningitis, should be included in the Universal Immunisation Programme of India. The Government of India introduced the vaccine for Hib in the form of the Pentavalent vaccine, which provides protection against five life-threatening diseases. Diphtheria, pertussis, tetanus, Hepatitis B and Hib. The DPT (diphtheria, pertussis, tetanus) and Hepatitis B vaccines were already part of the national routine immunisation programme. Protection against Hib is a new addition.

Currently, nine States across India - Tamil Nadu, Kerala, Jammu & Kashmir, Haryana, Karnataka, Gujarat, Delhi, Goa and Puducherry - have included this vaccine in their immunisation programme, and many other States have shown interest. Introducing a vaccine in the immunisation programme enables public health programmes to reach remote, inaccessible and poorer sections of



the society who would otherwise not have access to this life saving intervention.

India has demonstrated in its polio eradication and vaccination programmes that dedicated efforts can reach the most vulnerable populations and ensure encouraging results.

Vaccines are safe and the most effective preventive tools. In some cases vaccines may have a few mild side effects such as pain, redness, and swelling at the injection site, irritability and increased crying or fever. Pentavalent vaccines have been demonstrated to be efficacious and effective in numerous studies and are widely supported by global and Indian health communities. Hib-containing vaccines have been introduced and are currently employed in more than 180 countries with tens of millions of children having received the pentavalent vaccine across the world.

Recently, a few critics of the vaccine expressed concern about the safety of Pentavalent due to serious adverse events including death, reported after vaccination in India and neighbouring countries.

India, like many countries, trained its health workers and strengthened the system for reporting of any adverse events, before the vaccine was introduced into the immunisation programmes of selected States, starting in 2011.

These reports of adverse events and deaths following immunisation were thoroughly investigated by national authorities and international experts. Other countries too did the same. In Bhutan, Sri

Lanka and Vietnam there were reports of deaths around the time of immunisation, and as a precaution, there was a temporary suspension of the vaccine during the investigations of these adverse events. However, the investigations in India and other countries did not show evidence that the vaccines had caused the deaths.

Since then, all three countries have reintroduced the Pentavalent vaccine, and Bhutan now boasts of 97 per cent coverage, according to the World Health Organisation.

Although the apprehension about the serious side effects of the vaccine is understandable, the knee-jerk reaction of calling to withhold a valuable public health tool is dangerous to say the least. We need to keep in perspective that although there are risks with all medical interventions, including vaccines, the fact that the public health benefits almost tens of thousands of Indian infants, is substantial.

We should continue to be vigilant to ensure the safety of our children, but it is equally important that we move forward, embrace and incorporate newer technologies in our own system that can help save lives.

Just like the vaccine for small pox eradicated the disease from our memories and the oral polio vaccine has helped India achieve over two and a half years of polio free status, it is time we accept the benefits of this life-saving tool and ensure its access to all of India's children.

□ □ □

*(The writer is president of the
Asia Pacific Paediatric Association)*

(Courtesy :- The Pioneer)



So Much of Water, little to drink

● Kota Sriraj



Rainwater harvesting can also improve the eco-system and health. It can reduce river and stream erosion by managing storm water run-off. The fear of chlorine and the need for purification is taken care of



A s per the Indian meteorological Department, the current monsoon season has seen normal rainfall and, in fact, excess rainfall in some parts of the country. However, the apathy towards conservation of excess rainwater is writ large across the country.

In the national capital alone, approximately 69 billion litres of rainwater hit over 140 sq km area of rooftops in the city, with an average of 490 mm rainfall annually. However, how much of this water is actually conserved is a matter of concern, as only 300 to 400 establishments including schools and residential colonies have properly implemented rainwater harvesting. The city is still not serious given the fact that there is no active monitoring to ensure the implementation of the rainwater harvesting facilities in new structures.

According to the projections of The Central Ground Water Board, ground water recharge can be doubled if establishments and households have rainwater harvesting facilities and the same are properly

implemented everywhere.

Add to this, the Government establishments instead of setting examples for the citizens are being questioned for allowing excess rainwater to go waste. The Delhi Metro Rail Corporation in July 2013 admitted before the National Green Tribunal that 42 out of its 105 elevated stations do not have rainwater harvesting facility resulting in eight crore litres of rain water being wasted every monsoon.

Given the massive depletion of groundwater table, this kind of waste is unaffordable. At the same time there are examples to the contrary. The city of Chennai which once reeled under water shortages is now self-sufficient due to stringent application of rainwater harvesting guidelines for new as well as old structures. Yet, many smaller cities are not faring better due to the absence of requisite infrastructure as well as the will to prevent excess rainwater run off.

For example, Aurangabad received 300 mm rainfall since June 1 or 10,000 crore litres



of water, which is more than the city's annual requirement, but 80 per cent of the same has not been conserved and gone down the drain due to absence of any harvesting facilities.

Given the horizontal expansion of cities where vacant land is being developed for housing layouts, ensuring water security is of critical importance and needs to be an in-built feature of the layout. On an average, for a housing of 100 people located on a two hectare area, 40 lakh litres of water is needed annually and this two-hectare area receives on an average of 1,000 mm rainfall. Given this, efforts are needed to ensure conservation of at least 80 per cent of this rain water to recharge the ground water table and, thereby, ensure water security for the inhabitants.

In addition, rainwater harvesting can help conserve municipal water by reducing the amount of water needed for toilet flushing and outdoor watering. According to the estimates, less than three per cent of municipally treated water is actually used for drinking. The rest goes down the toilet, washing cars or watering the gardens. The home owners can employ usage of rain water for alternate applications and reduce their daily municipal water use by approximately 30 per cent.

Rainwater harvesting can also improve eco - system, health and reduce river and stream erosion by means of managing storm water runoff.

There are other benefits to rainwater usage as it contains none of the chlorine found in centralised municipal water supplies,

and needs little, if any, purification or disinfection. The water is naturally soft, sodium and mineral free making it ideal for bathing and washing. In addition it does not produce scale on appliances and eliminates the need for salt-producing, water-softening devices.

Although an exhaustive legislation is in place in India to further rainwater harvesting and its implementation but the same is rendered toothless due to erratic and half-hearted execution. In order to improve execution of rainwater harvesting, the Government can involve NGOs, especially for information gathering and awareness generation.

In many States, the incentives are limited to nominal rebates in property taxes and or subsidies in setting up the rainwater harvesting structures. The Government needs to plan much more imaginative incentives such as linking the benefit to discounted water and or electricity bill every month.

The impetus to popularise the concept on a nationwide basis would need far greater efforts on the part of the Government. In fact certain State Governments such as those of Tamil Nadu, Rajasthan and Maharashtra resort to penalties such as disconnection of water connection to the building that does not implement rainwater harvesting facilities.

Such stringent steps may seem retrograde in nature but are important to ensure proper implementation.



(Courtesy :- The Pioneer)



Making our cities eco-friendly

● Kota Sriraj

▶ ***The scant resources for organic composting at the disposal of the authorities is affecting waste collection in urban areas. This has led to the proliferation of unhygienic civic conditions*** ◀

Organic composting is assuming an everincreasing significance in today's world, as the disposal of increasing quantities of urban solid waste becomes a major challenge for municipal authorities. While Governements and NGOs in India are recycling the organic component of solid waste, inorganic waste such as glass and metals are recycled by the informal sector.

The common means of composting being used here is the windrows method; the Supreme Court's committee for solid waste management in the country endorses the windrows concept when large quantities of waste have to be handled and put through the composting procedure.

However, organic composting in India is apparently not going as per plan. The primary cause is the inefficient segregation of inorganic waste such as glass, plastic and metals from organic waste. This should ideally happen at the source. Composting plants in Delhi and elsewhere can take a leaf out of composting facilities at Suryapet and Vijayawada in Andhra Pradesh where the output compost met and passed the statutory

guidelines of European countries. In these two cities solid waste is segregated at source.

However, in cities like Delhi the problem of inefficient composting is compounded by the fact that the waste segregation drive by the State Governments has failed to take off and worse still, in situations where the effort of environmentally aware institutions and homes that are dutifully segregating waste is left ineffective as eventually the segregated waste gets mixed up in the garbage collection trucks. This speaks of the inept manpower and total lack of training and capacity building of the waste handlers.

Most of the failures in composting initiatives are due to a lack of attention at the planing stage in understanding the demand and marketing so generated. In many projects across the country, the lack of technical know-how and its strict implementation is proving to be a pivotal cause in the composting project to suffer losses as well as not perform as per laid down standards. Another crucial aspect that is being ignored is efficient storage practices of the finished product. Take the case of the Bhalswa compost plant



in Delhi, where the finished product is stored in the open and thus sacks get damaged and exposed to rains. This results in the nutrients getting washed away.

According to a study conducted by the Indian Institute of Soil Science, Bhopal, most plants do not adhere to the Fertiliser (Control) Order, 1985, guidelines pertaining to physico-chemical properties, fertilising potential and heavy metal polluting potential of solid waste compost in 29 cities. The study found organic matter, nitrogen and phosphorus contents in the compost to be low and heavy metal content high. None of the samples taken were within the FCO limits. Compost samples of Suryapet, Vijayawada and Kanpur were found to be of the prescribed quality.

However, given this scenario, the composting plants featuring in this study and not being able to meet the FCO guidelines, are being lauded instead of being corrected. For instance, the composting plant in Okhla received ` 25 lakh as carbon credits from the United Nations Framework Convention on Climate Change for processing two lakh tonnes of solid waste into compost through aerobic composting technology.

The Government needs to intervene and ensure that funding and incentives either from the Government or other agencies is directly tied to quality control and achievement of sales targets of organic composting. This alone can help improve the state of affairs at the composting plants and of the quality of

their output.

Organic waste composting has its challenges, such as the costly segregation process of separating inorganic from organic waste. In addition to this, the availability of scant resources at the disposal of the authorities is affecting waste collection in cities. This has led to unhygienic civic conditions and health hazards for the communities in urban areas.

But the Government needs to understand the importance of quality operations at all the composting plants, as the organic manure output can be a good avenue for entrepreneurs wanting to enter the market the same.

In addition, organic composting is a sustainable solution to waste management problems and is also a method to reduce quantities of waste by converting organic matter to a safer and useful product that recycles nutrients to enhance long-term soil fertility.

Once the quality parameters of the organic manure are achieved the Government can give a boost to its sales potential by offering incentives in the form of subsidy to farmers and by competitively pricing the manure in the open market. The Government can also partner with NGOs to launch a sustained awareness campaign on the issue in the targeted markets.



(Courtesy :- The Pioneer)



Child Labour in India

"Out of school children comprise the workers and non workers. In our view they together signify a measure of deprivation among children and can be considered as a potential labour pool always being at the risk of entering the labour force".

India is sadly the home to the largest number of child labourers in the world. The census found an increase in the number of child labourers from 11.28 million in 1991 to 12.59 million in 2001. M.V. Foundation in Andhra Pradesh found nearly 400,000 children, mostly girls between seven and 14 years of age, toiling for 14-16 hours a day in cottonseed production across the country of which 90% are employed in Andhra Pradesh. 40% of the labour in a precious stone cutting sector is children. NGOs have discovered the use of child labourers in mining industry in Bellary District in Karnataka in spite of a harsh ban on the same. In urban areas there is a high employment of children in the zari and embroidery industry.

Poverty and lack of social security are the main causes of child labour. The increasing gap between the rich and the poor, privatization of basic services and the neo-liberal economic policies are causes major sections of the population out of employment and without basic needs. This adversely affects children more than any other group. Entry of multinational corporations into industry without proper mechanisms to hold

them accountable has led to the use of child labour. Lack of quality universal education has also contributed to children dropping out of school and entering the labour force. A major concern is that the actual number of child labourers goes undetected. Laws that are meant to protect children from hazardous labour are ineffective and not implemented correctly.

A growing phenomenon is using children as domestic workers in urban areas. The conditions in which children work is completely unregulated and they are often made to work without food, and very low wages, resembling situations of slavery. There are cases of physical, sexual and emotional abuse of child domestic workers. The argument for domestic work is often that families have placed their children in these homes for care and employment. There has been a recent notification by the Ministry of Labour making child domestic work as well as employment of children in dhabas, tea stalls and restaurants "hazardous" occupations.



According to HAQ, Centre for child rights, child labour is highest among schedules tribes, Muslims, schedule castes and OBC children. The persistence of child labour is due to the inefficiency of the law, administrative system and because it benefits employers who can reduce general wage levels.

According to HAQ, Centre for child rights, child labour is highest among schedules tribes, Muslims, schedule castes and OBC children. The persistence of child labour is due to the inefficiency of the law, administrative system and because it benefits employers who can reduce general wage levels. HAQ argues that distinguishing between hazardous and non hazardous employment is counter productive to the elimination of child labour. Various growing concerns have pushed children out of school and into employment such as forced displacement due to development projects, Special Economic Zones, loss of jobs of parents in as slowdown, farmers suicide, armed conflict and high costs of health care. Girl children are often used in domestic labour within their own homes. There is a lack of political will to actually see to the complete ban of child labour.

Bonded child labour is a hidden phenomenon as a majority of them are found in the informal sector Bonded labour means the employment of a person against a loan

or debt or social obligation by the family of the child or the family as a whole. It is a form of slavery. Children who are bonded with their family or inherit a debt from their parents are often found in agricultural sector or assisting their families in brick kilns, and stone quarries. Individual pledging of children is a growing occurrence that usually leads to trafficking of children to urban areas for employment and have children working in small production house versus factories. Bonded labourers in India are mostly migrant workers, which opens them up to more exploitation. Also they mostly come from low caste groups such as dilits or marginalised tribal groups. Bonded child labourers are at very high risk for physical and sexual abuse and neglect sometimes leading to death. They often are psychologically and mentally disturbed and have not learnt many social skills or survival skills.

In 2000 the ILO estimated 5.5 million children had been forced in labour in Asia, while the Bonded Labour Liberation Front placed 10 million bonded children in India alone. In 1998 the government of India labelled bonded child labour as a marginal problem with only 3000 or so cases. A survey in Tamil Nadu in 1995 found 125,000 bounded child labourers in the state alone. Child bonded labour in India is mostly in the agricultural sector but has in recent times been moving into other sectors as well such as beedi-rolling, brick kilns, carpet weaving, commercial sexual exploitation, construction, fireworks and matches factories, hotels, hybrid cottonseed production, leather, mines, quarries, silk, synthetic gems, etc.



(Courtesy :- Central Chronicle)



International Human Rights Instruments and their Application in India

• Sanjay Kumar Vishwakarma



The Chart of Ratification of International Instruments, provided by the United Nations, should ideally form the corpus of international customary law, applicable in all democratic countries. Once an instrument is ratified a signatory is bound to bring in laws that conform to United Nations standards. Even if these instruments are not legally binding, they are morally compelling. India has yet to ratify a host of international instruments.



Its adherence to them is, at best, ambiguous. The mandate of the National Human Rights Commission (NHRC), established under the Human Rights Protection Act of 1993, provides a lens through which the situation can be better understood.

According to the Statement of Objects and Reasons of the Human Rights Protection Bill, the NHRC would review the existing laws, procedures, and the system of administration, and emphasize that India is a party to the International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR) as well as the International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights (ICESCR).

However, India is not a signatory to many other international conventions or mechanisms like the UN Convention against Torture and Other Cruel, Inhuman or Degrading Treatment or Punishment, the Convention on the Status of Refugees, Optional Protocols to the ICCPR and the Protocol relating to the status of refugees. The

UN Code of Conduct for Law Enforcement Officials, the UN Body of Principles for the Protection of All Persons under Any Form of Detention or Imprisonment, and the UN Principles on the Effective Prevention and Investigation of Extra-Legal, Arbitrary and Summary Executions also form the basic tenets of customary international law.

On 18 January 1994, South Asia Human Rights Documentation Centre (SAHRDC) wrote to the National Human Rights Commission to reiterate SAHRDC's desire to seek clarification on Clause 1, Sub Clause (d), of the Human Rights Protection Act which states "human rights means the right relating to life, liberty, equality and dignity of the individual guaranteed by the Constitution or embodied in the International Covenants and enforceable by courts in India".

"Human rights", as defined in the sub-clause (d) of Clause 1 of the Human Rights Protection Act of 1993, is extremely restrictive and does not adhere to the international



instruments; so restrictive, in fact, that it goes against the very spirit of the Universal Declaration of Human Rights.

For example, while ratifying the International Covenants on 27 March 1979, India expressed its reservation to Article 9 of the ICCPR relating to preventive detention. The delegation from India stated, "With reference to article 9 of the ICCPR, the Government of the Republic of India takes the position that the provisions of the article shall be so applied as to be in consonance with the provisions of the clauses (3) to (7) of the article 22 of the Constitution of India. Further, under the Indian legal system, there is no enforceable right to compensation for persons claiming to be victims of unlawful arrest and detention against the State." However, the Supreme Court of India in recent judgements has been attempting to broaden the scope of compensation.

The reason offered by the Government of India is, as usual, a thinly veiled excuse. Though the right to compensation has been constrained by lack of adequate constitutional provisions and their official expression of reservations at the provisions in the ICCPR, compensation for illegal arrest and detention and custodial deaths have been awarded at the discretion of individual judges or benches.

A whole set of rights embodied in Article 12, 19(3), 21 and 22 of the ICCPR (the right to freedom of movement, the rights permissible curbs on freedom of speech, the right to assembly and association), are restricted. Article 17 of the ICCPR relating to the right to privacy is also legally enforceable in India, especially, in post and telephone communications.

In its letter to the National Human Rights

Commission, SAHRDC stated that all international conventions that form the corpus of international customary law are applicable in all countries that are members of the United Nations and the World Community. SAHRDC specifically referred to the following conventions, declarations and principles in addition to the two covenants mentioned in the NHRC Act:

- Universal Declaration of Human Rights
- Convention against Torture
- Convention on the Elimination of Racial Discrimination
- Convention on the Prevention and Punishment of Genocide
- Convention relating to the Status of Refugees
- Convention on the Elimination of Discrimination Against Women
- Convention on the Rights of the Child

SAHRDC also drew the attention of the NHRC to the four Geneva Conventions and their Additional Protocols. It pointed out that internationally accepted principles relating to the administration of justice would have to be incorporated into the NHRC's work.

These included:

- Standard Minimum Rules for the Treatment of Prisoners
- Code of Conduct for Law Enforcement Officials
- Body of Principles on Detention or Imprisonment
- Principles of Medical Ethics
- Basic Principles on the Independence of the Judiciary
- Basic Principles on the Role of Lawyers



- Declaration on Protection from Enforced Disappearances
- Principles on the Prevention of Summary Executions

SAHRDC did not receive a response from the National Human Rights Commission. However, in its first Annual Report the NHRC suggested some amendments to the Protection of Human Rights Act. Referring to Section 2(1)(d), the NHRC suggested “Human rights means the right relating to life, liberty, equality and dignity of the individual guaranteed by the Constitution or embodied in the International Covenants, Conventions and Treaties to which India is party”.

The only difference in the suggested amendment to the Section 2(1)(d) is that if India is a party to a Covenant, they do not have to be legally enforceable in courts in India for the NHRC to act on petitions based on these human rights issues.

Human Rights Education

Over the years, the government has taken very few steps to increase human rights awareness at either the institutional level or informal level. This has been one of the major contributing factors to persistent human rights violations, particularly by law enforcement officials, who are not given any human rights training. The National Council for Teachers Education has introduced a self learning module on “Human Rights and National Values” on 11 March 1996 to train the teachers on human rights. The National Human Rights Commission also organized a seminar on Human Rights Education on 16 February 1996 in collaboration with Canadian Human Rights Commission. The National Human Rights Commission in cooperation with the National Council of Educational Research and Training has brought out a

source book on human rights education. The NHRC’s programme evoked mixed reaction. Although, human rights activists welcomed the NHRC’s initiatives, it has not been modeled as to attract the students.

However, human rights education of the law enforcement personnel is yet to be comprehensively discussed. On 6 February 1996, personnel of several para-military forces at a debate asserted that undue stress on adherence to human rights would make them inactive thereby crippling anti-terrorist operations. Organized by the National Human Rights Commission, in collaboration with the Border Security Forces, the debate on “Security forces observing human rights are better equipped to combat organized violence” evoked divergent views with speakers opposing the proposition forcefully making the point that the language of love would not work with terrorists.

Stating that para-military forces would be rendered ineffective if they were more worried about human rights, the speakers said it had become a fashion to speak of human rights and its violation. They emphasized that terrorism and organized violence could be annihilated only through barrel of guns.

However, there were many who spoke the language of Gandhi and tried to bring home the fact that long-term remedy for terrorism and violence lay in persuasive efforts and observance of human rights. They said that by violating human rights short-term success might be possible. But the real remedy, they argued, was in getting the support of the people which was possible only by adhering to human rights to the core.

□ □ □

Compiled by : Research Officer , MPHRC

Source: www.legalservicesindia.com



EVE-TEASING: A SITUATIONAL STUDY OF BHOPAL (M.P.)

● Himansu Kasyap & Neha Khurana

Statement of problem :- India is country where we have 48 legislations related to woman. Out of which 5 specifically deals with woman. India, a country where woman empowerment is explicitly recognized as a key for social, economic and over all development of the nation. Still, why does woman face eve teasing?

Hypothesis:-

1. People are afraid to report the matter.
2. They are afraid of the ill effects of the report.
3. Sometimes they do not get support from their family members.
4. Eve teasing is still considered as a stigma in our society.
5. Sometimes they do not get support of the bystanders.
6. Doers are under the impression that they will not be punished.
7. We don't have specific laws related to eve teasing.
8. Police is inefficient in ensuring safe environment.

Objectives

1. To find out the root causes of eve teasing.
2. To look into the frequency of eve teasing done with women.

Research methodology:-

The researchers have used non-doctrinal method of study and the sources relied on are primary.

Picturesque of the Study

We started with preparing the questionnaire and it is consisted of 35

questions. The questionnaire is to be filled by girls only. Then the next step was to select the colleges. We decided to select those colleges which are more prone to eve teasing. Then we selected 5 colleges namely (a) Gandhi Medical College(GMC) (b) Maulana Azad National Institute of Technology(MANIT) (c) Institute for Excellence in Higher Education (d) Sarojini Naidu Government Girls Postgraduate (Autonomous) College(NUTAN) (e) Barkhatullah University. We were divided in 2 groups. Group A consisted of Himanshu Kasyap, Neha Khurana & Dolly Joshi and Group B consisted of Ritambara Das & Madhurima De Sarkar. Group A was allotted three colleges namely, GMC, MANIT & NUTAN and group B was allotted 2 colleges namely, Institute for Excellence in Higher Education & Barkhatullah University. We were supposed to get 100 questionnaire filled from colleges, '20' questionnaire from each college. We got '20' questionnaire filled from GMC, '21' from NUTAN college, '22' from MANIT, '13' from Institute for Excellence in Higher Education and '0' from Barkhatullah university. Therefore, in total we have '76' questionnaire and this report is based on the data given in these 76 questionnaires. (All these 76 questionnaires enclosed with this project in separate file)

Introduction

Oxford Dictionaries defines eve teasing as "the making of unwanted sexual remarks or advances by a man to a woman in a public place."¹



The term Eve teasing is used to refer to sexual harassment of women in public places such as the streets, public transportation, parks, beaches, and cinema halls. This type of a public harassment by a lone man or gangs of women includes such as verbal assaults such as making passes or unwelcome sexual jokes: nonverbal assaults such as showing obscene gestures, winking, whistling, and staring; and physical assaults such as pinching, fondling and rubbing against women in public places. In addition, several instances of eve teasing have been followed by more violent assaults such as rape and murder.²

Eve teasing is a euphemistic expression that lives in post - colonial India and refers largely to sexual harassment of women in public places, thereby constituting women as eves, temptresses who provoke men into sexual titillation. This popular perception of sexual harassment posits the phenomena as a joke where women are both a tease and deserve to be teased. Considered a growing problem throughout the sub - continent, eve teasing ranges in severity from sexually coloured remarks to outright groping. It is the same story everyday.

The Law on eve teasing in India

Section 354D of IPC says that: Whoever follows a person and contacts, or attempts to contact such person to foster personal interaction repeatedly, despite a clear indication of disinterest by such person, or whoever monitors the use by a person of the internet, email or any other form of electronic communication, or watches or spies on a person in a manner that results in a fear of violence or serious alarm or distress in the mind of such person, or interferes with the mental peace of such person, commits the offence of stalking.³ This recent amendment

of 2013 tries to incorporate eve teasing in its own way and mentioned in the Criminal Law Amended Act 2013, denoted as stalking.

Under Indian Penal Code the term eve teasing is not used. There are three sections under which action can be taken against eve teasers. Section 294 punishes any obscene act or recital of any obscene songs or ballad or words in a public place with a punishment of three months or fine or both.

Section 509 (Indian Penal Code) punishes anyone who, to intrude upon the privacy of a woman or with an intent to outrage her modesty utters any word, makes any sound or gesture or exhibits an object with an imprisonment for one year or fine or both. It is a cognizable as well as a bailable offence. Another section is 354 (IPC) according to which anyone who uses forces or assaults a woman to outrage her modesty will be punished with 2 years of imprisonment or fine or both.⁴

Laws against eve teasing in Bangladesh

Article 76 of the Dhaka Metropolitan Police Ordinance 1976 of the Penal Code of 1860 affirms that any acts, conducts or verbal abuses that are used to disgrace women are punishable by law. Bangladesh was one of the first developing countries to establish a Ministry of Women's affairs in 1978. In Women and Children (Repression and Prevention) Act 2000, an excellent provision was included in section article 10 that greasing a woman like making obscene comments or gestures was an effort covered by it providing for up to seven years of simple imprisonment or meticulous imprisonment for two years. But the act was amendment in 2003 where no one could be charged with sexual abuse of women until it is physical. But one can enforce her right under section 509 of the Penal code where it is clearly



stated that if anybody intending to insult the modesty of any women, utters any word, make any sound or gesture or exhibits any object, intending that such word or sound shall be heard, or that such gesture or object shall be seen, by such women, or intrudes upon the privacy of such women, shall be punished with simple imprisonment for a term which may extend to one year or with fine or with both.⁵

Data collected

1. What do you understand by 'Sexual street harassment' / 'Eve Teasing'?

- Light hearted flirtation with strangers in public space.(4) (5.2%)
- Any means employed to get a woman's attention in the public space.(1)(1.3%)
- Any behaviour that is unwanted by a woman and makes her uncomfortable.(68)(89.4%)
- Asserting your power by intruding into someone's private territory.(0)
- na-2 (2.6%)
- Other (please specify)

2. I can say that on an average, out of every 10 visits to a public place, I have experienced / witnessed harassment, in some form or the other :

- On about 4 - 5 occasions, I think(15) (19.7%)
- On about 2 - 3 occasions, I think(22) (28.9%)
- On 1 occasion, may be(29) (38.1%)
- Not even once.(6) (7.8%)
- na-1(1.3%)
- Other (please specify)

3. I can say that on an average, out of every 10 visits to My College/School , I have experienced / witnessed harassment, in some form or the other :

- On about 4 - 5 occasions, I think(3) (3.9%)
- On about 2 - 3 occasions, I think(9) (11.8%)
- On 1 occasion, may be(36) (47.3%)
- Not even once.(25) (32.8%)na-2 (2.6%)
- Other (please specify)

4. Where in your city are acts of sexual street harassment more prevalent?

- Generally, on a road or street.(23) (30.02%)
- Generally, in busy markets.(11) (14.4%)
- Almost, in every public space.(41) (53.9%)
- On the entrance of College/School(2) (2.6%)
- Other (please specify)

5. Do you think Sexual Street Harassment/ Eve Teasing are a matter of Concern?

- Not at all, it is a trivial matter.(0)
- Not a serious problem.(0)
- I am not sure.(3) (3.9%)
- Yes, it concerns me (I think about it).(39) (51.3%)
- Yes, it concerns me very deeply.(33) (43.4%)

6. Please rate the following situations of harassment/ eve teasing, as common and rare according to your knowledge/ experience. (You can write down how many times these happened)

Act Done	Very Common	Common	Rare
Staring/ Leering	68 (89.4%)	7(9.2%)	0
Following/ Stalking	3(3.9%)	53(69.7%)	33(43.4%)
Whistling	17(22.3%)	39(51.3%)	19(25%)
Touching/ Groping	4(5.2%)	15(19.7%)	56(73.6%)
Passing lewd / sexually explicit remarks about looks/body	9(11.8%)	32(42.1%)	33(43.4%)
Singing Song	36(47.3%)	34(44.7%)	5(6.5%)
Kissing Sound/ Action	9(11.8%)	38(50%)	29(38.1%)



Pinching/ Poking	4(5.2%)	17 (22.3%)	55(72.3%)
Touching/itching his private parts publically with an intention to make uncomfortable	2(2.6%)	18(23.8%)	55(72.3%)
Pushing against you in public transport/ Rubbing body	17(22.3%)	26(34.2%)	32(42.1%)

7. On an average in a 6 month period, how many times do you face/ witness incidents, categorized as 'High' (on severity) by you in the above question?

- More than 5 occasions (24) (31.5%)
- On about 4 - 5 occasions.(10) (13.1%)
- On about 2 - 3 Occasions.(25) (32.8%)
- Once, may be.(12) (15.7%)
- Almost never.(2) (2.6%)
- na-1 (1.3%)

8. In your opinion, some men tease/ harass women, because (You can mark more than one tick here)

- They think its fun (43) (56.56%)
- They think it's a time pass (33) (43.4%)
- They think its 'manly'(33) (43.4%)
- They are frustrated.(15) (19.5%)
- They know they'll not be opposed or punished. (48) (63.1%)
- Because of the cultural dominance of men over women (6) (7.8%)
- They think women like it. (3) (3.9%)
- Women call for it.(21) (27.6%)
- They think women will not pay attention/ converse without being provoked (28) (36.8%)
- na-1 (1.3%)

9. When a girl goes out to a public space

- She never feels secure irrespective of her clothes and time. (28) (36.8%)
- She sometimes feels insecure

irrespective of her clothes and time. (33) (43.4%)

- She feels secure as long as her clothes and time are appropriate. (9) (11.8%)
- She always feels secure irrespective of her clothes and time. (2) (2.6%)
- na-2 (2.6%)
- Other

10. At a broader level, why do incidents of Sexual Street Harassment occur in society?

- The Police are inefficient in ensuring safe environment. (28) (36.8%)
- No stringent punishment to deter the culprits. (38) (50%)
- Public Apathy - The victim gets/ expects no help from the surrounding people. (25) (32.8%)
- Wrong mindset of males about females. (39) (51.3%)
- Women dress inappropriately. (2) (2.6%)
- Women invite trouble themselves by going to 'wrong places' at 'wrong times'. (1) (1.3%)
- It is a natural phenomenon - men are attracted to women. (2) (2.6%)
- Less interaction between men and women. (9) (11.8%)
- Victims do not report the matter. (20) (26.3%)

11. How does an incident of Eve Teasing / Sexual Street Harassment make you feel?

- I enjoy it.(0)
- I enjoy it when done by a person whom I know or in whom I am interested. (2) (2.6%)
- I do not feel anything; it's too common an issue. (3) (3.9%)
- I feel bad, but I have learned to live with it. (11) (14.4%)



- e. I feel bad, but I feel helpless. (19) (25%)
- f. I feel bad, and I want to do something to confront the issue. (39) (51.3%)
- g. I feel bad, and I often confront such an incident. (40) (52.63%)

12. Generally, do you confront (face to face with hostile or argumentative intent) a situation when someone tries to harass you / tease you in a sexual manner?

- a. Yes (19) (25%)
- b. No (25) (32.8%)
- c. Not Applicable (4) (5.2%)
- d. Depends (29) (38.1%)

13. If No, please indicate a reason for your choice.

- a. I enjoy it, I like the attention. (Makes me feel that I m Pretty)(0)
- b. It does not bother me anymore. (1) (1.3%)
- c. It bothers me but I have learned to live with it. (7) (9.2%)
- d. It bothers me but what can I do alone. (15) (19.7%)
- e. I am afraid of the harasser, the situation may turn worse. (21) (27.6%)
- f. I do not want to confront and make a scene. (18) (23.6%)
- g. I do not have time, I have other priorities. (6) (7.8%)
- h. na-9(11.8%)

14. Generally, do you try to draw the attention of the bystanders to the incident?

- a. Yes (18) (23.6%)
- b. No (32) (42.1%)
- c. They themselves come forward and help me. (12) (15.7%)
- d. Depends (14) (18.4%)

15. If yes, what is the usual reaction of the bystanders?

- a. Generally they do not pay attention (5) (6.5%)

- b. Stand there and watch (16) (21%)
- c. Confront the culprit and rescue me of the situation (21) (27.6%)
- d. Confront the culprit and teach him a lesson (9) (11.8%)
- e. Confront the culprit and report the matter to police (4) (5.2%)
- f. Tell me it's my fault (because of the clothes, place, time etc.)(1) (1.3%)
- g. na-11 (14.4%)

16. If no, please indicate why don't you draw attention of the bystanders or try to seek help?

- a. I don't feel the need, it's a small issue. (1) (1.3%)
- b. I don't need anybody's help to take care of myself. (5) (6.5%)
- c. I have prior experience that nobody helps. (22) (28.9%)
- d. I cannot describe publicly what the culprit did to me. (8) (10.5%)
- e. I don't want to describe the incident for the amusement of an insensitive crowd. (11) (14.4%)
- f. I am fearful that if I raise voice what the culprit would do next time. (more serious consequences like attack me with acid)(14) (18.4%)
- g. I generally don't have the time. (4) (5.2%)
- h. na-9(11.8%)

17. Have you ever stepped in to confront an incident where someone else was being sexually harassed / teased in front of you?

- a. Yes (28) (36.8%)
- b. No (34) (44.7%)
- c. Not Applicable (14) (18.4%)
- d. na-1 (1.3%)

18. If yes, please share what happened, how you intervened and the result of same. (Please try to remember what



- were the reactions of the victim, the culprit and the bystanders)**
1. I shouted and called for help.
 2. Boy was passing comment, I shouted and public helped me.
 3. Boys doing eve teasing and I confronted but crowd didn't help.
 4. Man was slapping women, I intervened, both went away.
 5. Boys rubbing body in bus against my body. I shouted and crowd helped me.
- 19. In such situations where you did not confront, please indicate what was your thought process?**
- a. The woman did not seem to be concerned. (4) (5.2%)
 - b. The woman called for it by her choice of clothing / choice of place / choice of time. (5) (6.5%)
 - c. It's best not to get involved in the matters of others. (13) (17.1%)
 - d. I wanted to help but the victim didn't ask for help. (7) (9.2%)
 - e. I wanted to help but could not, I was alone. (23) (30.02%)
 - f. I was afraid that the victim may back out leaving me alone in the scuffle (11) (14.4%)
 - g. The culprit may have harmed me the next time - they are dangerous people. (12) (15.7%)
 - h. I didn't have time - I had other priorities. (2) (2.6%) na-7(9.2%)
- 20. Will it be easier to take initiative if you know the people around you will also help and support you?**
- a. Yes certainly it gives confidence. (62) (81.5%)
 - b. Yes May be. (10) (13.1%)
 - c. It is unlikely that it will affect my decision in any way. (4) (5.2%)
 - d. Certainly not. I'll never want to get involved. (2) (2.6%)
- e. Other
- 21. Do you think we need to do something to stop 'Sexual Street Harassment' in our own capacity?**
- a. No, one individual cannot make a difference. (1) (1.3%)
 - b. Yes, but I do not know what to do. (10) (13.1%)
 - c. No, I do not want to get into trouble. (4) (5.2%)
 - d. Yes, definitely we need to stop this menace. (60) (78.9%)
 - e. Yes, but its government's job to ensure that city is safe. (8) (10.5%)
 - f. No, the issue isn't seriously disturbing. (1) (1.3%)
 - g. I want to, but it seems dangerous. (8) (10.5%)
 - h. na-1(1.3%)
 - i. Other
- 22. In your opinion what are the major obstacles to stop 'Sexual Street Harassment'?**
- a. Lack of strong laws - No strong punishments to deter future incidents. (52) (68.4%)
 - b. Insensitive police - do not treat the matter with due importance and sensitivity. (24) (31.57%)
 - c. Public Apathy - These days' people don't help others who are in trouble. (17) (22.3%)
 - d. Changing attitude of women - they dress inappropriately and venture out unsuitably. (1) (1.3%)
 - e. Cultural / historical patterns of male dominance over woman. (14) (18.4%)
 - f. Under reporting, most of the cases go unreported. (20) (26.3%)
 - g. Lack of prompt action on the culprit. (25) (32.8%)



h. na-2 (2.6%)

i. Other

23. Which of these if ensured will have the most positive impact to stop 'Sexual Street Harassment'? Please select the top 2 options.

a. Strong laws to punish culprits to deter future incidents. (55) (72.3%)

b. Sensitive police - treat the matter with due importance and sensitivity. (25) (32.8%)

c. Public Empathy - if people help each other to confront such incidents. (20) (26.3%)

d. If women understand how to dress suitably and where to go at what time. (3) (3.9%)

e. Change in perceptions of men towards women and their rights. (17) (22.3%)

f. Reporting of all such incidents. (12) (15.7%)

g. A Toll Free number where prompt action is taken. (15) (19.7%)

h. na-1(1.3%)

i. Other

24. Do you/ would you report a case of Sexual Street Harassment to the legal authorities?

a. Yes, always (15) (19.7%)

b. Yes, but only when severe (23) (30.02%)

c. Yes, if there is an easier way to report (30) (39.4%)

d. Yes, but I am not aware of the process (11) (14.4%)

e. No, I do not think it is required

f. Never, I do not see any advantage of reporting ()

g. na-1(1.3%)

25. In your opinion, what are the reasons that majority of such cases are not reported to legal authorities?

a. No easy way to report. (21) (27.6%)

b. Lack of awareness of existing mechanisms. (9) (11.8%)

c. Lack of strong laws to convict the culprit. (30) (39.4%)

d. Prior bad experiences. (7) (9.2%)

e. Reporting to insensitive staff. (19) (25%)

f. General fear of Police (2) (2.6%)

g. Hassles related to the legal procedures. (12) (15.7%)

h. I don't expect any results. (19) (25%)

i. Social Stigma attached to reporting. (11) (14.4%)

j. There are no problems; it is pretty convenient and effective to report a case. (1) (1.3%)

k. na-1(1.3%)

26. According to you of which particular age men target for eve teasing

a. below 18 years 7(9.2%)

b. 18-25 years 30(39.4%)

c. 26-35 years 1 (1.3%)

d. age doesn't matter 40(52.6%)

27. According to you of which age group of men do most of eve teasing

a. below 18 years 6(7.8%)

b. 18-25 years 23(30.02%)

c. 26-35 years 11(14.4%)

d. 36 years and above 4(5.2%)

e. age doesn't matter 35(46.05%)

28. According to you if a girl wears a revealing/western dress, she attracts eve teasing

a. Yes. 25 (32.8%)

b. No. 32 (42.1%)

c. don't know. 10(13.1%)

d. others (14.4%)

29. In front of your college is there a group of boys present everyday to eve tease the girls

a. Yes. 10 (13.1%)

b. No. 36 (47.3%)

c. Sometimes for a number of days. 27 (35.5%)



- d. Others Common (2.6%)
e. (na-1) (1.3%)
- 30. Are you aware of laws?**
a. Yes 13(17.1%)
b. No 14(18.4%)
c. Few of them 48(63.1%)
d. Others 1(1.3%)
- 31. What was the reaction of the police after the complain (tell with your experience)**
a. Prompt action was taken 6(7.8%)
b. No action was taken 15(19.7%)
c. Never inquired and they never informed about the same 22(28.9%)
d. Don't know 16(21%)
e. Other 5 (6.5%)
f. (na-1) (1.3%)
- 32. If you report the matter to police what kind of questions they put during questioning**
a. What you were wearing 24(31.57%)
b. What you were doing at that particular time. 30(39.4%)
c. You were with a boy or a girl 16(21%)
d. Others (9.2%)
e. (na-4) (5.2%)
- 33. After eve teasing whom you informed first**
a. Parents 34(44.7%)
b. Brothers 6(7.8%)
c. Sister 8(10.5%)
d. Friends 36(47.3%)
e. Others 3 (3.9%)
f. (na-2) (2.6%)
- 34. What was the reaction of the concerned person**
a. They ask to ignore the matter 18(23.6%)
b. They themselves took action (started accompanying you to that particular place) 26(34.2%)
- c. They themselves took action (talked to the concerned person) 24(31.57%)
d. Reported the matter to police 5(6.5%)
e. Other (6.5%)
f. (na-5) (6.5%)
- 35. At what stage you prefer to report the matter**
a. Staring/leering 5(6.5%)
b. Following/ stalking 29(38.1%)
c. Whistling 3(3.9%)
d. Touching/ Grouping 39(51.3%)
e. Passing lewd/ sexually explicit remarks about looks/ body 17(22.3%)
f. Singing song 3(3.9%)
g. Kissing sound/ action 14(18.4%)
h. Pinching/ poking 16(21%)
i. Touching/ itching his private parts publically with an intention to make uncomfortable 26(34.2%)
j. Pushing against you in public transport/ rubbing body 22 (28.9%)
k. (na-6) (7.8%)
- Findings**
1. Eighty nine percent people are aware of the meaning of eve teasing.
 2. Ninety four percent girls are concerned with eve teasing.
 3. 86.7 percent of girls have experienced eve teasing at least once out of there 10 visits to a public place. Twenty percent have experience it on 4-5 occasions and 29 percent have experienced it on about 2-3 occasions.
 4. Sixty three percent of girls have experienced eve teasing at least once out of there 10 visits to their college.
 5. Fifty three percent eve teasing instances are taken place in pubic place and 30 percent on road or street.
 6. Eighty nine percent of girls think that staring is Very common form of eve



- teasing.
7. Seventy percent think that following is common form of eve teasing.
 8. Fifty one percent think that whistling is common form of eve teasing.
 9. Seventy four percent think that touching is rare form of eve teasing.
 10. Forty one percent think that passing sexually explicit remarks about looks/body are common and 43 percent think that it's rare.
 11. Forty seven percent of girls think that singing song is very common form of eve teasing and 45 percent consider it to be common. That means that 92 percent girls think that singing song is common form of eve teasing.
 12. Fifty percent girls think that kissing sound/ action is common form of eve teasing where as 38 percent think it to be rare form of eve teasing.
 13. Seventy two percent girls think that poking/ pinching is rare form of eve teasing.
 14. Seventy two percent girls think that touching his private parts to make women uncomfortable is a rare form of eve teasing.
 15. Twenty two percent think that pushing against them/rubbing body in public transport is a very common form of eve teasing. Thirty four percent think it to be common form of eve teasing. Forty two percent think it to be rare form of eve teasing. This means that 56 percent girls think that it is common form of eve teasing.
 16. Men do eve teasing because they think that it's fun (57%), it's a time pass (43%), its manly (43%), they know that they are not going to be punished (63%) and they think that women will not pay attention until provoked (37%).
 17. Eighty percent girls feel insecure when they go to public place irrespective of there clothes.
 18. Incidents of eve teasing occur because a. No stringent punishment to deter the culprits (50%), b. Wrong mindset of males about females. (50%) c. Police are inefficient in ensuring safe environment (37%).
 19. Fifty three percent girls feel bad about eve teasing.
 20. Twenty five percent girls confront situation of eve teasing while 38 percent take action depending on gravity of eve teasing. Twenty eight percent do not confront because situation may turn worse.
 21. Forty two percent girls do not draw the attention of bystander while 24 percent does. When there attention is drawn, they help (28%) while 21 percent stand there and watch. Those who are not drawing have reason that they have already experienced that no body helps (29) and they are afraid of serious consequences (18%).
 22. Forty five percent girls do not confront when other girl is being eve teased while thirty seven percent do. They do not confront because it is best not to interfere in others matter (17%) and others wanted to help but they were alone (30%).
 23. Eighty two percent think that it will be easier to ask for help from by standers if we know that they are willing to help.
 24. Seventy nine percent girls think that they should do something to stop this.
 25. Major obstacles in eradicating eve teasing are a. No strong punishments to deter future incidents (68.4%), b.



insensitive police - do not treat the matter with due importance and sensitivity (31.57%), c. Lack of prompt action on the culprit (32.8%).

26. Seventy two percent girls think that strong laws will have positive impact to stop eve teasing. Sensitive police (33%) and public apathy (26%) will also deter incidents of eve teasing. Twenty percent think that there should be a toll free number specially for reporting eve teasing numbers.
27. Thirty nine percent will report matter to police if there is easier way to report the matter. Thirty percent report matter to police in severe cases.
28. Men mainly target age group of 18-25 for eve teasing (39%) and forty percent think that age doesn't matter at all.
29. Forty six percent think that age of men doesn't matter for doing eve teasing. While thirty percent think that only men of age group 18-25 years do eve teasing.
30. Thirty two percent girls think that revealing dress leads to eve teasing while 42 percent think that dress has no role in eve teasing.
31. At times there is group of boys outside college waiting for doing eve teasing.
32. Sixty three percent girls are aware of few laws related to eve teasing.
33. Forty five percent girls inform the matter to parents and forty seven percent inform the matter to friends.
34. Sixty five percent took action by themselves on being informed about eve teasing. While twenty four percent asked to ignore the matter.
35. Fifty one prefer to report the matter at the stage of touching. Thirty eight percent report matter at the stage of

being followed. Twenty nine percent report matter on being rubbed against there body.

Recommendation

1. There is need to have special act on eve teasing dealing specifically with eve teasing.
2. Strict action to be taken in case of eve teasing.
3. Sensitization of masses is required to change the mind set of people which can be done by different seminars and street plays.
4. Toll free number specially for reporting of eve teasing. Prompt action is also required on reported matter. There should be a follow up plan too to protect girl from that offender.
5. College and school authorities shall have power to take cognizance of matter and forward it to police without disclosing the identity of the victim.
6. Identity of the complainant shall be kept confidential which will reduce the fear of being further harassed.
7. First time warning shall be given to the culprit to make him realize that he is under scanner now and must stop doing any kind of eve teasing.
8. An online complaint filling procedure should be there which will increase the reporting of cases because victims don't have to go to police officer or any other authorities.
9. Pasting of stickers and notices which provide valuable information to public in general regarding eve teasing. They should also provide for filing of complain not only by victim but also by any third party who is eye witness to that particular incident.
10. People should be sensitized to collect



evidence by using technological inventions which will provide valuable evidence for the conviction of culprit. In absence of evidence these culprits will go free and will create more problems for the victim.

11. Sensitization of police should be done so that victim can sought there immediate help in case of eve teasing in public place.
12. Special instructions shall be given to bus drivers and other concerned person for separate setting arrangements for female and male. This will reduce rubbing and touching of body by offenders.
13. Analysis of complaint shall be done to find out habitual offenders and adequate steps shall be taken to bring them under the ambit of law.
14. Vocational training shall be given to school going students regarding equality of women.

Conclusion

We have 48 legislations dealing with issues relating to women but still incidents of eve teasing are at rise and it is no where evident that it is going to be reduced in future. Reasons are many ranging from fear of serious consequences, lack of public support, lack of awareness of laws, no easy way to report the matter, lack of evidence which ultimately leads to eviction of culprit to there being no specific law dealing with the menace of eve teasing. Need of the hour is to have a stringent special law on eve teasing so that women can be protected and can feel safe and secure at public places. Men and women are like two wheel of a vehicle and once one is disfigured or damaged than vehicle cannot function. It is very much important that both of them must work in cooperation with each other so that the ultimate agenda of social, economic and overall development of society and nation can be achieved.

Footnotes

¹<http://oxforddictionaries.com/definition/english/eve-teasing>, last visited on 15th April, 2013

²<http://www.legalserviceindia.com/articles/etea.htm>, last visited on 15th April, 2013

³[http://en.wikipedia.org/wiki/Criminal_Law_\(Amendment\)_Act,_2013#New_offences](http://en.wikipedia.org/wiki/Criminal_Law_(Amendment)_Act,_2013#New_offences), last visited on 15th April, 2013

⁴<http://www.mightylaws.in/799/menace-eve-teasing-problem-solution>, last visited on 15th April, 2013

⁵<http://www.lawyersnjurists.com/resource/articles-and-assignment/eve-teasing-is-very-common-social-problem-and-every-day-women-come-across-some-form-of-eve-teasing-and-women-should-be-empowered-to-fight-back-due-to-end-this-evil-act-2/>, last visited on 15th April, 2013

(Both Researchers are the PG student of NLIU, Bhopal (M.P.) & Conduced this study as Intern of MPHRC)

